ग्रह-नक्षत्र

श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

वक्तव्य

बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग ने 'राष्ट्रभाषा-परिषद्' की स्थापना इसी उद्देश्य से की थी कि यथासम्भव हिन्दी-साहित्य के कतिपय अभावों की पूर्ति और उसकी श्रीवृद्धि हो सके। वास्तव में किसी साहित्य की समृद्धि तथा शोभा महत्त्वपूर्ण पुस्तकों से ही होती है। राष्ट्रभाषा-हिन्दी में अब विशेषतः ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता अनुभूत हो रही है जिनसे हिन्दी के माध्यम-द्वारा विभिन्न विषयों की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देने में सहायता तथा ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनुसंधान करने की सुविधा मिल सके। इस कार्य में परिषद् सतत प्रयत्नशील है।

परिषद् से प्रकाशित मौलिक वैज्ञानिक पुस्तकों में यह तीसरी है। दो नई पुस्तकें और भी इसी साल निकलनेवाली हैं। आगे भी यह क्रम जारी रहेगा। परिषद् को बड़ा संतोष होगा यदि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के पल्लवित-पुष्पित करने में उसकी सेवाएँ समर्थ हो सकेंगी।

वैज्ञानिक साहित्य को सुबोध और श्रीसम्पन्न बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस शास्त्र के अधिकारी विद्वानों की चित्रबहुल पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। पारिभाषिक विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होनेवाले आवश्यक चित्रों का समावेश होने से पुस्तकगत विषय बहुत-कुछ सुगम हो जाता है। विज्ञान-विषयक पुस्तक की उपयोगिता बढ़ानेवाली इस बात पर परिषद् ने यथेष्ट ध्यान रखा है।

इस पुस्तक के स्वाध्यायशील लेखक श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस० मुजफ्फरपुर-जिले के निवासी हैं। छात्रावस्था में आप पटना-विश्वविद्यालय की सभी परीक्षाओं में प्रथम रहे। हिन्दी के अतिरिक्त आप अँगरेजी, फ्रेंच, संस्कृत, गणित और ज्योतिष के भी विद्वान् हैं। आपने उर्दू की उच्च श्रेणी की सैनिक परीक्षा भी पास की है। बिहार-राज्य के प्रशासनकार्य में रत रहते हुए भी आप साहित्यसेवा के निमित्त समय निकाल पाते हैं, यह आप जैसे अन्य शासनाधिकारियों के लिए अनुकरणीय है। आपकी एक दूसरी पुस्तक (हिन्दू-धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ) भी परिषद् से ही प्रकाशित हो रही है, जो मौलिक गवेषणा और रोचकता की दृष्टि से हिन्दी में एक अनूठी वस्तु होगी। आशा है कि आपकी प्रस्तुत पुस्तक विस्मयविवर्द्धक खगोल-जगत् के नेत्ररंजक दृश्यों की ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट करेगी।

शिवपूजन सहाय
परिषद्-मंत्री

बसन्तोत्सवावकाश, संवत् २०११

भूमिका

साधारण प्रशासन में लगा हुआ कोई सरकारी कर्मचारी 'ग्रह-नक्षत्र' जैसे गहन विषय पर कोई पुस्तक लिखने का दुःसाहस करे तो उसे अपनी कुछ सफाई तो अवश्य देनी होगी।

भौतिक विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मैंने तारामण्डल, उल्का, नीहारिका इत्यादि जैसे आकाशीय वस्तुओं से कुछ परिचय अवश्य प्राप्त किया था। दिन में पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तथा फूलों से कुछ दिलचस्पी रही और स्वभाव का अकेला होने के कारण रात को कभी-कभी ताराओं को देखता रहा। मेरे दोस्त और उनके बच्चे मेरी इन हरकतों को जान गये और लगे मुझपर प्रश्नों की बौछार करने। मैंने कम-से-कम बच्चों को तो पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तथा फूलों के नाम हिन्दी में ही बताने की चेष्टा की; पर जब वे मुझसे ताराओं के नाम पूछने लगे तब तो मैं मुश्किल में पड़ा; क्योंकि मुझे तो केवल अंग्रेजी नाम मालूम थे। इन बच्चों की खातिर मैंने ताराओं के भारतीय नामों से परिचित होना अपना कर्तव्य समझा। और, इसी तलाश में बहुत-सी पुस्तकों को तथा तारा-चित्रों को छान डाला।

मैंने अपनी इस खोज में जितने भी तारा-चित्र देखे, वे यूरोप अथवा संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के अक्षांशों के लिए उपयुक्त थे। मैंने उत्तर भारत के अक्षांशों के लिए कुछ तारा-चित्रों को बनाना चाहा, जिनमें तारा तथा तारा-समूहों के नाम हिन्दी में हों। मित्रों ने, विशेष कर प्रिय बन्धु श्रीजगदीशचन्द्र माथुर ने बढ़ावा दिया और पूरी एक पुस्तक ही लिख देने को कहा। सूर्य-सिद्धान्त एवं आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य के ग्रन्थों को पढ़कर, उनके ढाँचे में आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान का यथासाध्य समावेश करके, अपने बनाये हुए तारा-चित्रों को मिलाकर, मैंने एक पुस्तक तैयार कर ली।

इसके कुछ अंश सर्वसाधारण के योग्य हैं, कुछ अंश सरलता से वैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित करनेवाले हैं तथा बहुतेरे अंश गणित अथवा भौतिक विज्ञान के जिज्ञासुओं के व्यवहार के योग्य हैं। मैंने जानबूझकर इन अंशों को अलग-अलग करने की चेष्टा नहीं की है।

मैंने 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के समक्ष इस पुस्तक को यही समझकर प्रस्तुत किया है कि गणित तथा भौतिक विज्ञान के सम्बन्ध में अध्ययन एवं अनुसंधान के अनुरागी सज्जन इससे लाभ उठा सकेंगे तथा मुझसे अधिक विद्वान् लेखक पुस्तक के भिन्न-भिन्न अंशों से खगोल-विज्ञान-सम्बन्धी सर्वोपयोगी साहित्य तैयार करने की सामग्री पा सकेंगे। मुझे

विश्वास है, इस पुस्तक को पढ़कर इस विषय के अधिकारी विद्वानों का ध्यान विशेष प्रामाणिक ग्रन्थ के निर्णय की ओर आकृष्ट होगा।

पठन-पाठन से यों तो सन् १९४१ ई० से मेरा लगभग विच्छेद ही हो गया है। किसी समय मैं भौतिक विज्ञान एवं गणित का परिश्रमी विद्यार्थी होने का दावा कर सकता था; पर अब तो ऐसा भी कुछ नहीं कह सकता। अतः विद्वान् और जिज्ञासु पाठक यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि देखें, जिसकी बहुत अधिक संभावना हो सकती है, तो हमें सूचित करने की कृपा करें जिससे इसके आगामी संस्करण में आवश्यक सुधार किया जा सके। और, यदि किसी सुयोग्य विद्वान् लेखक के मन में इस विषय पर इससे भी अच्छी पुस्तक लिखने की प्रेरणा हुई तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

पुस्तक के चित्रों के बनाने में मुझे बिहार-सचिवालय के पूर्ति-विभाग के आलेखक से सहायता मिली थी, जब मैं पूर्ति-विभाग में था।

बिहार-सचिवालय के लोकनिर्माण-विभाग के ड्राइंग सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा दामोदर-वैली कारपोरेशन के डिजाइन-विभाग के मित्रों ने भी मेरी सहायता की है। उनको तथा अन्य मित्रों को, जिन्होंने किसी रूप में मेरा हाथ बटाया, मैं सहर्ष धन्यवाद देता हूँ।

सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र बिहार के शिक्षासचिव बन्धुवर श्रीजगदीशचन्द्र माथुर हैं, जिनकी प्रेरणा से मैंने यह पुस्तक लिखी।

स्ट्रैंड रोड, पटना
३ मार्च, १९५५ ई०

—त्रिवेणीप्रसाद सिंह

विषय-सूची

ग्रह-नक्षत्र

पहला अध्याय

खगोल

आश्चर्य की बात है कि ताराओं को नित्य देखते रहने पर भी अधिकतर लोग उनका परिचय प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते। इसका एक कारण तो यह है कि घड़ियों के प्रचार, मानचित्र, सड़क, रेलगाड़ी इत्यादि के हो जाने से समय तथा दिशा के ज्ञान के लिए लोगों को ताराओं की शरण नहीं लेनी पड़ती। पर अबतक भी समुद्री जहाज तथा हवाई जहाज इन्हीं के सहारे चलते हैं। वेधशालाओं की घड़ियाँ ताराओं से ही मिलाई जाती हैं और फिर इनसे और घड़ियाँ। ताराओं के ज्ञान का उपयोग जनसाधारण के नित्य जीवन में तो दिशा तथा समय का निरूपण भर है; परन्तु विज्ञान के लिए ताराओं के महत्त्व की सीमा नहीं है। ताराओं के अध्ययन के लिए ही तथा उनके क्रमबद्ध भ्रमण से प्रेरित होकर विज्ञानों की कुंजी गणितशास्त्र की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी तथा पार्थिव वस्तुओं के विषय में जो भी ज्ञान मनुष्य को अबतक प्राप्त हुआ है, उसका बहुत बड़ा अंश ताराओं के अध्ययन से ही मिला है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आकाश के तारे सुन्दर हैं तथा ध्रुव के चारों ओर उनका क्रमबद्ध भ्रमण और भी सुन्दर है। जिसे ताराओं का ज्ञान है, वह कहीं भी अकेला नहीं है। रात में वह अपने परिचित ग्रह-नक्षत्रों को उनके निश्चित स्थान में देखकर अपार आनन्द का अनुभव कर सकता है। ऋतु, मास, तिथि, सूर्योदय तथा सूर्यास्त के निश्चित समय, सूर्य की राशि तथा चन्द्रमा के नक्षत्र इत्यादि को समझनेवाला इन्हें न समझनेवालों की अपेक्षा विश्व को अधिक रोचक पायेगा।

रात्रि में सारा आकाश चमकीले ताराओं से जड़ा जगमगाता रहता है। जो तारे पूर्व दिशा में उगते हैं, वह पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा का स्थान नित्य-प्रति अन्य ताराओं की अपेक्षा बदलता रहता है। सूर्य के उदय होने पर तो तारे दिखाई नहीं देते; पर सूर्योदय के पहले तथा सूर्यास्त के बाद आकाश का निरीक्षण करने से ताराओं के बीच सूर्य के स्थान का पता चल जायगा। यह स्थान भी बदलता रहता है। इसी भाँति कुछ तारे भी हैं, जो अन्य ताराओं की अपेक्षा अपना स्थान बदलते रहते हैं। दूरवीक्षण यंत्र के बिना ऐसे पाँच तारे ही दिखलाई देते हैं। बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि। इन्हें भारतीय ज्योतिष में ताराग्रह कहते हैं। अन्य ताराओं की भाँति ग्रह टिमटिमाते नहीं; क्योंकि अपेक्षाकृत, पृथ्वी के समीप होने के कारण, इनका स्पष्ट आकार अन्य ताराओं से बड़ा है अतः वायुमंडल के कंपन का इनपर उतना प्रभाव नहीं पड़ता। ग्रह शब्द का अर्थ है —चलनेवाला। सूर्य तथा चन्द्रमा भी ग्रह ही हैं।

ग्रहों को छोड़कर शेष तारे आकाश में एक दूसरे की अपेक्षा अपना स्थान कभी नहीं बदलते। वह पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि पृथ्वी की गति से उनके पारस्परिक स्थान में कोई

अंतर नहीं दीखता। इनकी गति ऐसी होती है मानों यह किसी विशाल 'गोल' की भीतरी सतह पर जड़े हों और यह 'गोल' एक निश्चित धुरी के चारों ओर घूम रहा हो। तारात्रों के इस कल्पित गोल को खगोल कहते हैं। तारागण मंडलों (Constellations) में विभक्त हैं। खगोल के एक बार पूरा भ्रमण कर जाने का समय 'नाक्षत्र अहोरात्र' (Sidereal Day and Night) है। वास्तव में यह पृथ्वी के, अपनी ध्रुवा पर, एक बार भ्रमण का समय है। (आर्यभटीय-काल क्रिया-५)

सूर्य नित्यप्रति नक्षत्रों की अपेक्षा पश्चिम से पूर्व को हटता रहता है तथा एक नाक्षत्र सौर वर्ष (Sidereal Solar year) में नक्षत्रों की एक परिक्रमा कर जाता है। एक नाक्षत्र सौर वर्ष में ३६५·२५६ सावन—(Terrestrial) दिवस होते हैं तथा उतने ही समय में ३६६·२५६ नाक्षत्र अहोरात्र हो जाते हैं। प्राचीन ज्योतिषियों ने ग्रह-नक्षत्रों में कौन स्थिर तथा कौन चलायमान है तथा इनकी गति के क्या कारण है, इन प्रश्नों की बहुत छानबीन नहीं की है। पर उस काल के ज्योतिषियों ने अपने अल्प साधनों से ही ग्रह-नक्षत्रों की स्पष्ट गति की नाप-जोख करके उनका स्थान निरूपण करने के नियम निकाले। भारत के आर्यभट्ट को छोड़ कर सभी प्राचीन ज्योतिषियों ने पृथ्वी को स्थिर तथा ग्रह-नक्षत्रों को पृथ्वी के चतुर्दिक् घूमता हुआ माना। पृथ्वी गोलाकार है, यह सभी मानते थे। पृथ्वी के गोल होने के प्रमाण प्रारंभिक भूगोल जाननेवाले सभी लोगों को मालूम है। समुद्र के किनारे से देखने पर दूर जाते हुए जहाज का निचला भाग ही पहले अदृश्य होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा पर जो पृथ्वी की छाया पड़ती है, वह गोल होती है। पर इसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण तो यह है कि सीधे उत्तर या दक्षिण चाहे किसी स्थान से चलिए, पृथ्वी के धरातल पर बराबर दूरी तक चलने पर ध्रुव तारा के स्थान में उतना ही अन्तर होता है। लगभग ६९ मील में यह अंतर १° का होता है। उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव के पास पृथ्वी कुछ चपटी है। इसीलिए वहाँ १° के अन्तर के लिए ६९ मील से कुछ अधिक चलना होता है।

अब तो लोग पृथ्वी के चारों ओर नित्य ही घूम आते हैं तथा समस्त पृथ्वी में अगणित स्थानों के अक्षांश देशान्तर तथा समुद्रतल से ऊँचाई की ठीक-ठीक माप हो चुकी है। प्राचीन भारत में ज्योतिषियों ने अपनी ज्योतिर्गणना के लिए पृथ्वी पर कतिपय स्थानों के अक्षांश तथा देशान्तर अपनी सुविधा के अनुसार मान रखे थे। लंका को वह उज्जयनी के सीधे दक्षिण पृथ्वी की विषुवत् रेखा पर स्थित मानते थे। उज्जयनी का अक्षांश उन्होंने २२½° माना था। वास्तव में आधुनिक उज्जयनी का अक्षांश २३°/१२″ उत्तर है। लंका से ९०° पूरब हटकर यमकोटि नगर तथा ९०° पश्चिम में रोमकपट्टन नगर की कल्पना की गई थी। लंका के ठीक नीचे सिद्धपुर नगर माना गया था। लंका, यमकोटि, सिद्धपुर तथा रोमकपट्टन—ये चारों पृथ्वी के विषुव वृत्त पर ९०° के अंतर पर थे। पृथ्वी के उत्तर ध्रुव पर मेरु पर्वत तथा दक्षिण ध्रुव पर वड़वानल का स्थान था। (सूर्य-सिद्धान्त १२/३७-४०)।

उज्जयनी का अक्षांश तो लगभग २२½° है; पर न तो लंका विषुवत् रेखा पर है और न मेरु पर्वत (पामीर) उत्तर ध्रुव पर ही है। उज्जयनी के अक्षांश की तो कदाचित् माप हुई थी; पर ऊपर लिखे अन्य अक्षांश तथा देशान्तर तो तत्कालीन ज्योतिषियों ने समय—अर्थात् दिन, वर्ष इत्यादि—के माप-जोख को सुगम बनाने के लिए मान रखे थे। जब लंका में

सूर्योदय होता तब यमकोटि में मध्याह्न रहता, सिद्धपुर में सूर्यास्त होता रहता तथा रोमकपट्टन में आधी रात रहती (सिद्धान्त शिरोमणि ३—४४)। सूर्यसिद्धान्त में यह भी लिखा है कि मेरु (उत्तर ध्रुव) पर देवता रहते हैं तथा वड़वानल (दक्षिण ध्रुव) पर राक्षस। देवता तथा राक्षसों का दिन अथवा उनकी रात मनुष्यों के आधे वर्ष के बराबर है। जब देवताओं का दिन होता है तब राक्षसों की रात होती है और जब देवताओं की रात होती है तब राक्षसों का दिन (सू० सि० १/१४)।

प्राचीन ज्योतिषियों ने पृथ्वी को स्थिर माना। एकमात्र आर्यभट्ट ने ही ऐसा लिखा है कि लंका में स्थित मनुष्य नक्षत्रों की उल्टी ओर (पूरब से पश्चिम) जाता हुआ उसी भाँति देखता है जिस भाँति चलती नाव में बैठे मनुष्य को किनारे की स्थिर वस्तुओं की गति उल्टी दिशा में मालूम होती है—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानिभानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायां॥

—(आर्यभटीयः गोलपादः ९)
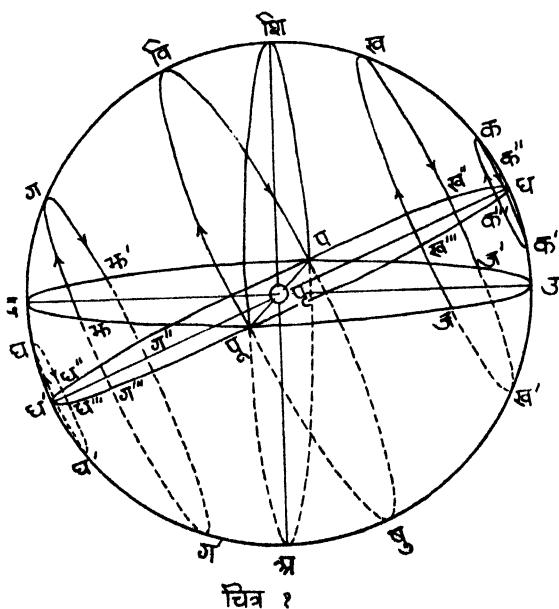
वास्तव में सूर्य अन्य नाक्षत्र ताराओं के समान है; परन्तु पृथ्वी के समीप होने से उसका प्रकाश अत्यन्त प्रखर है। बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, इन्द्र (Uranus), वरुण (Neptune) तथा प्लूटो—ये सब क्रमशः सूर्य के चतुर्दिक् (Ellipse) दीर्घवृत्त बनाते भ्रमण करते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करता है। इसीलिए चन्द्रमा को उपग्रह कहते हैं। पृथ्वी के एक निश्चित धुरी पर भ्रमण के फलस्वरूप नक्षत्रों का खगोल एक निश्चित धुरी पर घूमता दिखाई देता है। खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप ध्रुव तारा है जो आँखों को सदा स्थिर दिखाई देता है। पृथ्वी के किसी एक स्थान से किसी समय खगोल का अर्द्धांश ही दिखाई देता है। पृथ्वी के उत्तर अथवा दक्षिण ध्रुव से सदा खगाल का उत्तरी अथवा दक्षिणी भाग ही दिखाई देता है। इसके विपरीत पृथ्वी की विषुवत्‌रेखा के किसी भी स्थान से किसी समय खगोल के उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों ही भागों का आधा-आधा अंश दिखाई देता है। २५° उत्तर अक्षांश (काशी) की रेखा भारत को बीचोबीच काटती है। इस अक्षांश के किसी स्थान से देखने पर खगोल का उत्तर ध्रुव क्षितिज से २५° ऊपर को उठा दिखाई देता है। खगोल का दक्षिण ध्रुव क्षितिज से २५° नीचे रहने के कारण दिखाई ही नहीं देता। खगोल के उत्तर ध्रुव से २५° दूर तक के तारे अपने दैनिक भ्रमण में दक्षिणोत्तर मंडल (North-South line Meridian) को दो स्थानों में काटते हैं। यदि कोई तारा विशेष उत्तर ध्रुव से क°, दूर रहा तो ये दोनों स्थान क्रमशः क्षितिज के उत्तर विन्दु से २५°+क° तथा २५°–क° दूर रहते हैं। जबतक क° का मान २५° से कम रहता है, तबतक तारा २४ घंटे में कभी अस्त ही नहीं होता। ऐसे ताराओं को **ध्रुवसमीपक** (Circumpolar) तारा कहते हैं। इसके विपरीत खगोल के दक्षिण ध्रुव से २५° दूर तक के ताराओं का २४ घंटे में कभी भी उदय ही नहीं होता। ये तारे २५° उत्तर अक्षांश के स्थान से अदृश्य हैं।

नक्षत्र पृथ्वी से इतने दूर हैं कि दर्शक पृथ्वी-मंडल पर चाहे जहाँ-जहाँ भी जाय, उसे नक्षत्रों के पारस्परिक स्थान में कोई अन्तर नहीं दीखता। हाँ, ऐसा अवश्य होता है कि

स्थानान्तर से खगोल के कुछ नये भाग दिखाई देने लगते हैं तथा कुछ भाग अदृश्य हो जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह-नक्षत्रों के स्थान का निरूपण खगोल की सहायता से होता है। इसके लिए खगोल की त्रिज्या कितनी है, यह जानना अनावश्यक है। पृथ्वी के स्थानों का निरूपण भी इसी भाँति स्थान-विशेष के अक्षांश तथा देशान्तर द्वारा हो सकता है। इसके लिए पृथ्वी का व्यास कितना है, यह जानना अनावश्यक होगा।

स्मरण रहे कि नक्षत्रों का यह खगोल पूर्णतः कल्पित है। पृथ्वी (अथवा सूर्य) से ताराओं की दूरी भिन्न-भिन्न है। ताराओं की दूरी प्रकाशवर्षों में मापी जाती है। प्रकाश की गति एक सेकेंड में १८६००० मील है। इस गति से प्रकाश एक वर्ष में जितनी दूर चला जाय, वह प्रकाशवर्ष हुआ। निकटतम ताराओं से प्रकाश को आने में कई वर्ष लगते हैं। इसके विपरीत सूर्य से पृथ्वी तक आने में प्रकाश को केवल १६ मिनट ही लगते हैं। पृथ्वी की त्रिज्या ४००० मील है। इसका फल यह होता है कि यदि दो तारे परस्पर क° की दूरी पर हैं, तो पृथ्वी से देखने पर सभी स्थानों तथा सभी समय पर उनकी परस्पर दूरी उतनी ही रहेगी, तथा पृथ्वी के नित्य अपनी धुरी पर घूमने अथवा वर्ष-भर में सूर्य के चतुर्दिक् भ्रमण करने से नक्षत्रों के पारस्परिक स्थान में कोई अंतर नहीं आयगा। यह बात अक्षरशः सत्य नहीं है। वास्तव में पृथ्वी के भ्रमण से ताराओं के स्थान में सूक्ष्म अंतर होते हैं तथा उन्हीं को माप कर ताराओं की दूरी निकाली जाती है। अलमनक (Nautical-Almanac) में खगोल पर ताराओं के जो स्थान दिये रहते हैं, वह उस वर्ष के लिए माध्यमिक स्थान होते हैं।

चित्र-संख्या १ में, पृथ्वी के २५° उत्तर अक्षांश के किसी भी स्थान से. खगोल कैसा दीख पड़ेगा, इसका रूप दर्शित है।

चित्र १

'पृ' पृथ्वी है तथा २५° उत्तर अक्षांश पर खड़ा दर्शक है। वास्तव में खगोल की तुलना में पृथ्वी तथा उसपर खड़ा दर्शक दोनों विस्तार में विन्दुमात्र ही हैं। चित्र में

इसका विस्तार समझने की सुगमता के लिए बढ़ाकर दिखाया गया है। 'शि' दर्शक का शिरोविन्दु है, 'ध' खगोल का उत्तर ध्रुव है। परमवृत्त उ-प-द-पू दर्शक का क्षितिज है। 'अ' दर्शक का अधोविन्दु है। उ, प, द, पू, क्रमशः क्षितिज के उत्तर, पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व विन्दु है। परमवृत्त उ-शि-द-अ को दर्शक का याम्योत्तर (दक्षिणोत्तर) मंडल कहते हैं तथा परमवृत्त प-शि-पू-अ को दर्शक का पूर्वापर मंडल (Prime Vertical) अथवा सममंडल है।
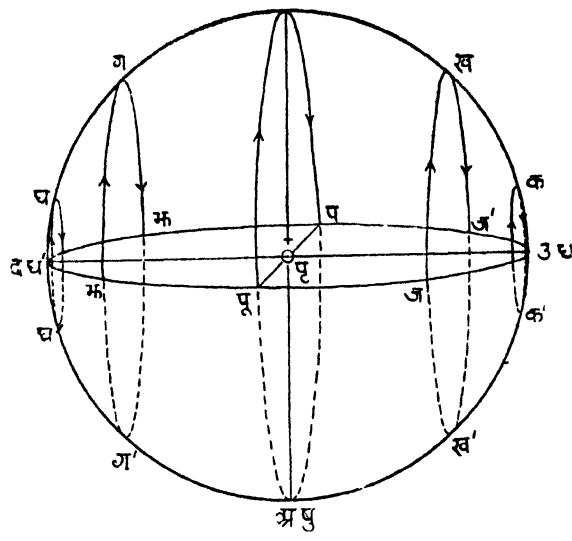
खगोल का उत्तर ध्रुव 'ध' क्षितिज से २५° ऊपर को उठा हुआ है। खगोल का दक्षिण ध्रुव 'ध'' क्षितिज के दक्षिण विन्दु 'द' से २५° नीचे होने के कारण अदृश्य है। पू-वि-प-वु खगोल की विषुवत् रेखा है। विषुवत् रेखा पर स्थित कोई भी तारा अपनी दैनिक गति से 'पू वि प वु' यह वृत्त बनायेगा। इसे विषुव-वलय कहते हैं। समय की माप प्राचीनकाल में नाडिकाओं में होती थी। विषुव-वलय के अंशों से समय का बोध होता था। अतएव विषुव-वलय को नाडीवलय भी कहते थे। इसका आधा अंश 'पू वि प' क्षितिज से ऊपर रहता है तथा आधा अंश 'प वु पू' क्षितिज से नीचे। खगोल के उत्तरार्द्ध में स्थित तारा 'ख' अपने दैनिक भ्रमण में 'ज ख ज' ख' यह वृत्त बनाता है। जिसमें तारा वर्त्तमान रहे (वर्तते), वह उसका अहोरात्र वृत्त है। 'ज' तथा 'ज'' ये दोनों विन्दु दर्शक के क्षितिज पर हैं। क्षितिज से ऊपर का भाग 'ज, ख, ज'' वृत्त के अर्द्धांश से अधिक है तथा नीचे का भाग 'ज' ख ज' अर्द्धांश से कम। तारा 'क' तथा खगोल के उत्तर ध्रुव 'ध' में २५° से कम का अंतर है। इसके फलस्वरूप २५° उत्तर अक्षांश पर इस तारा का अस्त ही नहीं होता।

तारा 'ग' खगोल के विषुव से उतना ही दक्षिण है जितना तारा 'ख' उत्तर को है। तारा 'ग' की परिक्रमा 'झ ग, झ' ग',' इस वृत्त पर होती है। झ तथा झ' ये दोनों विन्दु दर्शक के क्षितिज पर हैं। चित्र से यह स्पष्ट हो जायगा कि जितना समय तारा 'ख' क्षितिज से नीचे रहता है, उतना ही समय तारा 'ग' क्षितिज से ऊपर। खगोलिक दक्षिण ध्रुव 'ध' से २५° से कम के अन्तर का तारा 'घ' अपनी पूरी परिक्रमा 'घ-घ'' में क्षितिज के नीचे ही रहता है, इसलिए २५° उत्तर अक्षांश से ऐसे तारे कभी दिखाई ही नहीं देते। चित्र में वृत्त 'ध पू ध' प' को उन्मंडल कहते हैं। इस मंडल पर सूर्य सदा ६ बजे प्रातः तथा ६ बजे संध्या को जाता है। इस वृत्त का उत्तरार्द्ध, क्षितिज से ऊपर तथा दक्षिणार्द्ध क्षितिज से नीचे है (सू० सि० ३/६)। यह प्रत्येक तारा के अहोरात्र वृत्त को दो समान भागों में खंडित करता है। तारा क, ख, ग, तथा घ, इस वृत्त को क्रमशः क'' क''' ख'' ख''' ग'' ग''' तथा घ'' घ''' विन्दुओं में छेदते हैं। प्रत्येक तारावृत्त के इन विन्दुओं से ऊपर तथा नीचे के अंश समान हैं।

चित्र-संख्या २ में दर्शक पृथ्वी की विषुवत् रेखा पर है। खगोल का उत्तर ध्रुव 'ध' क्षितिज के उत्तर विन्दु 'उ' के स्थान पर चला गया है। इसी भाँति ध', तथा द, शि तथा वि, अ तथा वु, एक ही स्थान पर आ गये हैं। क, ख, ग,घ, चारों ही तारे अपने अहोरात्र वृत्त का आधा अंश क्षितिज के ऊपर तथा आधा अंश क्षितिज के नीचे व्यतीत करते हैं। खगोल का उन्मंडल (6 O'Clock Line) क्षितिज पर चला आया है। प्राचीन भारत में लंका विषुवत् रेखा पर स्थित माना जाता था; अतः उन्मंडल के पूर्वार्द्ध पर जब
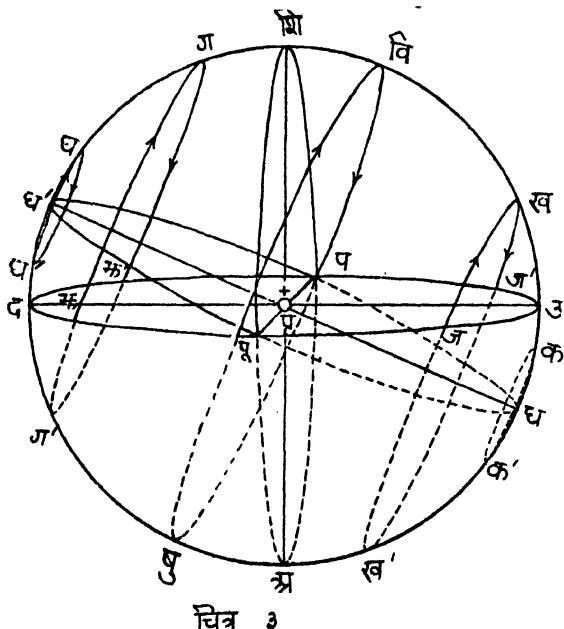
कोई ग्रह अथवा नक्षत्र आता था, तब उसका लंकोदय समझा जाता था। किसी ग्रह अथवा

चित्र

नक्षत्र के इस वृत्त पर आने का समय उस ग्रह अथवा नक्षत्र का लंकोदय काल कहा जाता था।

चित्र-संख्या ३ में दर्शक पृथ्वी के २५° दक्षिण अक्षांश के स्थान पर खड़ा है।
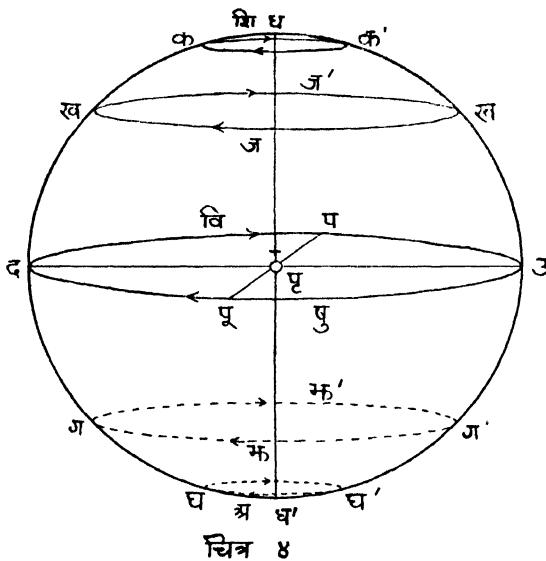
चित्र ३

खगोल का विषुव-वलय, शिरोविन्दु के उत्तर से जाता है। चित्र-संख्या १ में 'क' तथा

'ख' तारात्रों की गति है, वैसी गति चित्र ३ में 'घ' तथा 'ग' तारात्रों की है। खगोल का दक्षिण ध्रुव 'ध'' क्षितिज से २५° ऊपर को उठ गया है तथा खगोल का उत्तर ध्रुव 'ध' क्षितिज से २५° नीचे को चला गया है।
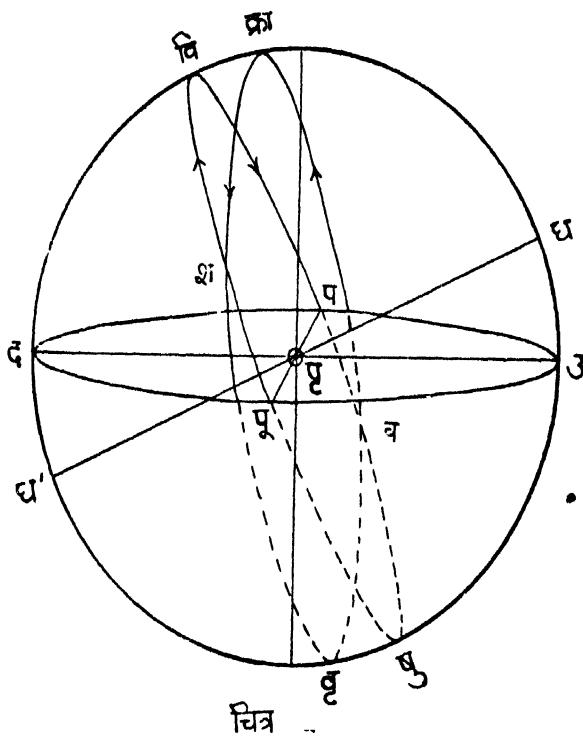
चित्र-संख्या ४ में दर्शक पृथ्वी के उत्तर ध्रुव पर है। खगोल का उत्तर ध्रुव 'ध' हटकर शिरोविन्दु 'शि' पर चला आया है। खगोल का विषुव-वलय 'वि-प-षु-पू' तथा दर्शक क्षितिज 'उ-पू-द-प' दोनों एक हो गये हैं। क, ख, इत्यादि उत्तर खगोल के तारे शिरोविन्दु अथवा

चित्र ४

क्षितिज से अपनी दूरी में कोई अंतर नहीं आने देकर गोल-गोल घूमते रहते हैं। खगोल के दक्षिणार्द्ध के तारे कभी क्षितिज के ऊपर आते ही नहीं। यदि दर्शक पृथ्वी के दक्षिण ध्रुव पर चला जाय तो अवस्था इसके सर्वथा विपरीत होगी। खगोल का दक्षिण ध्रुव 'ध'' शिरोविन्दु पर आ जायगा तथा खगोल के दक्षिणार्द्ध के तारे ही क्षितिज से ऊपर होंगे।

वर्ष-भर में पृथ्वी जो सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्त बनाती भ्रमण करती है तो ऐसा मालूम होता है मानो खगोल पर सूर्य का स्थान नित्य-प्रति बदल रहा हो। खगोल पर सूर्य के स्थान का निरूपण प्राचीन काल में ज्योतिषियों ने चन्द्रमा की सहायता से किया था। सूर्य के प्रकाश में भी चन्द्रमा दिखाई देता है। दिन में सूर्य तथा चन्द्रमा की परस्पर दूरी माप कर रात्रि में अन्य तारात्रों की अपेक्षा चन्द्रमा का स्थान ठीक-ठीक निश्चय किया जा सकता है। सूर्य नित्यप्रति थोड़ा-थोड़ा पश्चिम से पूरब हटते हुए एक वर्ष में खगोल की एक परिक्रमा करता है। इस प्रकार सूर्य खगोल को दो बराबर भागों में बाँटते हुए एक वलय बनाता है, जिसका केन्द्र दर्शक है। इस वृत्त को क्रान्ति-वलय कहते हैं (व क्रा श वृ-चित्र संख्या ५)। इसमें तथा खगोल के विषुव-वलय में लगभग २३° २७' का अंतर है। सूर्य का क्रान्ति-वलय व तथा श इन दो स्थानों में खगोल के विषुव-वलय

को काटता है। ये दोनों स्थान सांपातिक विन्दु कहलाते हैं। ये वही स्थान हैं, जहाँ वसंत तथा शरद् ऋतु में सूर्य अपनी दक्षिण से उत्तर अथवा उत्तर से दक्षिण की यात्रा में पृथ्वी की विषुव-रेखा के ठीक ऊपर आ जाता है। इन्हें क्रमशः वसंत-संपात तथा शरत्-संपात कहते हैं। जब सूर्य दो में से किसी एक संपात स्थान पर होता है तब उसकी गति चित्र-संख्या १ इत्यादि के विषुववर्त्ती तारे के समान होती है। सूर्य जब विषुव से

चित्र ..

सबसे अधिक उत्तर आ जाता है तब उसकी गति 'ख' तारा जैसी होती है तथा उत्तरी गोलार्द्ध में दिन लम्बे और रातें छोटी हो जाती हैं ; क्योंकि सूर्य अपेक्षाकृत अधिक समय क्षितिज के ऊपर रहता है तथा कम समय के लिए ही क्षितिज के नीचे जाता है। इसी भाँति जब सूर्य खगोलिक विषुव के दक्षिण जाता है, तब उसकी गति तारा 'ग' के समान हो जाती है। (चित्र संख्या १ से ४ तक)।

अपने क्रांतिवलय पर सूर्य की गति पश्चिम से पूरब है। अर्थात् जबकि नित्य २४ घंटों में सूर्य तथा अन्य ग्रहनक्षत्र पूरब से पश्चिम हट कर आकाश की एक पूरी परिक्रमा करते दिखाई देते हैं, तब सूर्य पूरे वर्ष-भर में पश्चिम से पूरब हटते हुए नक्षत्रों के खगोल की एक परिक्रमा कर लेता है।

दूसरा अध्याय

आकाशीय मापदंड
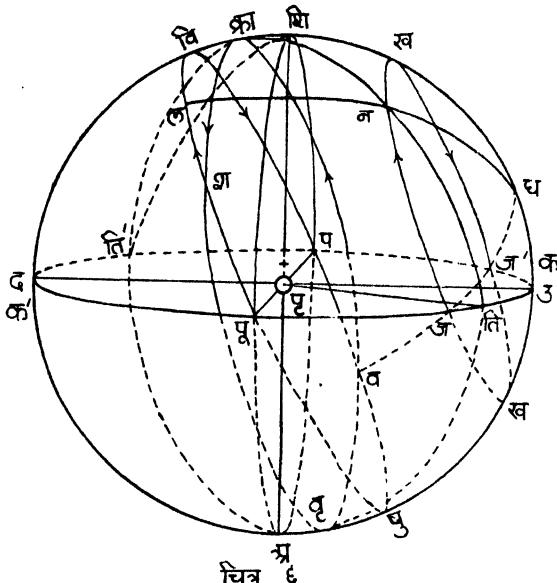
समय के अनुसार आकाशिक वस्तुओं के प्रत्यक्ष स्थान में परिवर्त्तन होता दीखता है। साधारणतः समय की गणना सूर्य से होती है। नाक्षत्र खगोल की परिक्रमा में सूर्य को जो समय लगता है, वह नाक्षत्र सौरवर्ष है। मध्यरात्रि से मध्यरात्रि तक का समय सौर अहोरात्र है। (अहः = दिन) सूर्योदय सें सूर्यास्त का समय 'सावन दिवा' तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक का 'सावन रात्रि' है। सावन दिवा या रात्रि, अवनि, अर्थात् पृथ्वी, के संयोग से बने हैं तथा उनका मान दर्शक के स्थान पर निर्भर करता है। सौर अहोरात्र का माध्यमिक मान समस्त पृथ्वी के लिए एक है; पर किसी स्थानविशेष का सौर समय उस स्थान के देशांतर पर निर्भर करता है। सौर अहोरात्र २४ घंटे का होता है। एक नाक्षत्र सौर वर्ष में ३६५$\frac{१}{४}$ सौर अहोरात्र होते हैं। नक्षत्रों का खगोल इतने ही समय में ३६६$\frac{१}{४}$ बार पूरा घूम जाता है अथवा पृथ्वी के ऐसा घूम जाता हुआ दिखाई देता है। नक्षत्रों की परिक्रमा एक बार जितनी देर में हो जाती है, उसे नाक्षत्र अहोरात्र कहते हैं (Sidereal Day and Night)। यह लगभग २३ घंटे ५६ मिनट का होता है। इसका अर्थ और कुछ नहीं, केवल इतना ही है कि यदि किसी स्थान-विशेष पर आज कोई नक्षत्र १० बजे रात्रि को उदय या अस्त होता है या आकाश के याम्योत्तर (दक्षिणोत्तर) मंडल पर आ जाता है तो कल वह नक्षत्र ९ बज कर ५६ मिनट पर ही उसी स्थानपर आ जायगा तथा क्रमशः एक वर्ष में यह अन्तर पूरे एक अहोरात्र का हो जायगा। इसके फलस्वरूप किसी एक स्थान पर नित्य एक समय आकाश का रूप एक-जैसा न रहेगा; परन्तु यदि प्रतिदिन चार मिनट पहले आकाश का निरीक्षण किया जाय तो नक्षत्रों का पारस्परिक स्थान एक-जैसा ही दीख पड़ेगा। ऐसा किसी सीमा तक ही किया जा सकता है; क्योंकि नित्य चार मिनट पहले देखते-देखते एक समय ऐसा आयगा कि चार मिनट पहले कोई नक्षत्र दिखाई ही न दे; क्योंकि तबतक सूर्य का अस्त नहीं हुआ रहेगा। फिर दर्शक के अक्षांश से नक्षत्रों के स्थान में परिवर्त्तन हो जाता है। यह सब होते हुए भी नक्षत्रों का पारस्परिक स्थान वस्तुतः एक-जैसा ही रहता है।

आकाशीय वस्तुओं की गति तथा उनकी परस्पर दूरी का ज्ञान अथवा आकाश के चमत्कारों का साधारण परिचय भी प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि

आकाश में इनके स्थान का ठीक-ठीक वर्णन हो सके। किसी स्थान-विशेष से **नक्षत्र** अथवा ग्रह-विशेष वहाँ से किस दिशा में है तथा क्षितिज से कितना ऊपर है तथा ठीक किस समय दर्शक ने उसको देखा, इतना यदि बता दिया जाय तो उस नक्षत्र अथवा ग्रह के स्थान का निरूपण हो जाता है। दर्शक के स्थान तथा अवलोकन के समय को निर्धारित कर देना आवश्यक है; क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है, दर्शक के स्थान तथा समय से किसी आकाशीय वस्तु के स्थान में अंतर हो जाता है।

आकाशीय वस्तुओं के माप-जोख की इस पद्धति को **क्षैतिज पद्धति** (Horizonta system) अथवा दृक् पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में स्थान-विशेष पर यदि किसी पतली डोरी में कोई भारी पत्थर बाँध कर लटकाया जाय तो इस 'सीस रज्जु' की सीध में खींची हुई सरल रेखा आकाश के दृश्य भाग को जिस विन्दु पर काटेगी, उसे शिरोविन्दु अथवा स्वस्तिक, तथा नीचे आकाश के अदृश्य भाग को जिस विन्दु पर काटेगी, उसे अधोविन्दु कहते हैं। ये दोनों विन्दु क्रमशः आकाश के दृश्यभाग के उच्चतम तथा अदृश्य भाग के निम्नतम स्थान हैं। शिरोविन्दु तथा अधोविन्दु के बीचोंबीच का **परम वृत्त** (Great circle) क्षितिज है। गोल पर खींचे जानेवाले सबसे बड़े वृत्तों को **परम वृत्त** कहते हैं। गोल का केन्द्र इनकी धरातल में होता है। शिरोविन्दु से होकर जाने वाले सभी परमवृत्त किसी-न-किसी **मंडल** के नाम से प्रसिद्ध हैं। चित्र-संख्या ६ में दर्शक के खगोल का दृश्य अर्थात् क्षितिज के ऊपर का भाग दिखाया गया है। 'पू-द-प-उ' दर्शक का क्षितिज है। 'शि' दर्शक का शिरोविन्दु है तथा 'ध' खगोल का उत्तर ध्रुव। 'न' किसी एक तारा का स्थान है। 'उ-ध-ख-शि-द' खगोल का वह परम वृत्त है जो शिरोविन्दु तथा क्षितिज के उत्तर तथा दक्षिण विन्दु से होकर जाता है। इसे **याम्योत्तर** अथवा **दक्षिणोत्तर मंडल** कहते हैं। परमवृत्त 'पू-शि-प' शिरोविन्दु तथा क्षितिज के पूरब तथा पश्चिम विन्दुओं से होकर जाता है। इस वृत्त को **पूर्वापर मंडल** कहते हैं। शिरोविन्दु 'शि' तथा तारा 'न' से होकर खींचे जानेवाले परमवृत्त 'ति-शि-न-ति'' का धरातल क्षितिज के धरातल पर लम्ब होगा। इस परमवृत्त को तारा 'न' का **दृक्मंडल** कहते हैं। यह मंडल सीस रज्जु दर्शक तथा तारा 'न' का धरातल है। यदि यह मंडल क्षितिज को 'ति' तथा 'ति''—इन दो विन्दुओं में छेदे, तथा नक्षत्र 'न' शिरोविन्दु तथा 'ति' के बीच हो तो 'ति' तथा 'न' के कोणीयान्तर को नक्षत्र 'न' का **उन्नतांश** तथा 'शि' एवं 'न' के कोणीयान्तर को तारा 'न' का **नतांश** कहते हैं। कोण 'द-पृ-ति' नक्षत्र की दिशा का ज्ञान कराता है। इसे **क्षितिजचाप** (Azimuth) कहते हैं। इसकी माप क्षितिज के दक्षिण विन्दु से पूरब अथवा पश्चिम को होती है। यदि कोई तारा याम्योत्तर मंडल पर हो तो उसका क्षितिज चाप ०° अथवा १८०° होता है। और यदि वह पूर्वापर मंडल पर हो तो उसका क्षितिजचाप ६०° पूरब अथवा ६०° पश्चिम होता है। चित्र में नक्षत्र 'न' का क्षितिजचाप लगभग १६०° पूरब है। इस पद्धति के अनुसार दर्शक के स्थान तथा समय के साथ नक्षत्र अथवा ग्रह का उन्नतांश तथा क्षितिजचाप बता दिया जाय तो उस नक्षत्र अथवा ग्रह के तात्कालिक स्थान का पूर्ण निरूपण हो जाता है। प्राचीन भारतीय पद्धति में

क्षितिजचाप के स्थान पर जहाँ तारा का उदय तथा अस्त हो, उन विन्दुओं की पूर्व तथा पश्चिम विन्दुओं से दूरी का व्यवहार होता था, जिसे तारा का अग्र (Amplitude) कहते थे। चित्र ६ में तारा 'न' का अग्र = पू ज = प ज' है।

चित्र ६
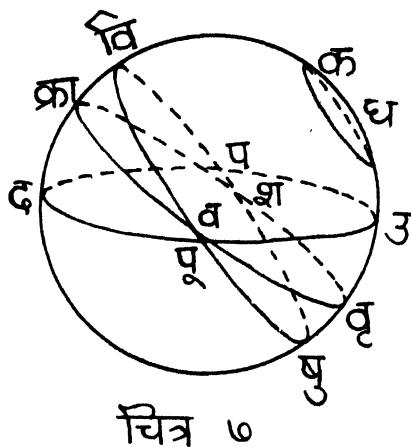
इस पद्धति में भारी त्रुटि यह है कि ऐसा वर्णन किसी स्थान तथा समयविशेष के लिए ही सत्य है। इसी कारण ज्योतिष में इस क्षैतिज पद्धति का व्यवहार न कर के असु तथा अपक्रम पद्धति का व्यवहार होता है। तारा 'न' की दूरी आकाश के उत्तर ध्रुव से एक-जैसी रहती है। 'न' तथा 'ध' विन्दुओं से होकर खींचा जानेवाला परमवृत्त खगोल के विषुव-वलय को विन्दु 'ल' में छेदता है। 'ल' से 'न' की दूरी को 'न' का अपक्रम (Declination) कहते हैं। इसे कोण में व्यक्त करते हैं। उत्तर ध्रुव का 'अपक्रम' ६०° उ है। इसी भाँति दक्षिण ध्रुव का अपक्रम ६०° दक्षिण है। विषुव-वलय पर 'व' अर्थात् वसंत-संपात से विन्दु 'ल' की दूरी नक्षत्र 'न' का असु है। विषुव-वलय को पूरा एक बार घूम जाने में २४ घंटे लगते हैं। इसका मान ३६०° के बराबर हुआ अथवा १ घंटा और १५° का कोण, ये दोनों बराबर हुए। यह 'घंटा' सौर (Solar) समय के अनुसार नहीं, वरन् नाक्षत्र समय के अनुसार है अर्थात् एक 'घंटा' सौर अहोरात्र की जगह नाक्षत्र अहोरात्र का चौबीसवाँ भाग है। वलय 'ध-न-ल' विषुव-वलय पू-वि-प-पु पर लम्ब है। 'ज-न-ख-ज'-ख'' तारा 'न' का अहोरात्र वृत्त है। इस वृत्त के किसी विन्दु से यदि 'ध-न-ल' जैसा परम वृत्त खींचा जाय तो वह विषुव-वलय पर लम्ब होगा तथा तारा के अहोरात्र वृत्त तथा विषुव-वलय के बीच का अंश अर्थात् तारा का अपक्रम प्रत्येक दशा में समान होगा। इस कारण अहोरात्र वृत्तों को समापक्रम वृत्त अथवा समपयान वृत्त (अपयान = अपक्रम) भी कहते हैं। वलय 'ध-न-ल' तारा का ध्रुवाभिमुख अथवा ध्रुवपोत लम्ब कहा जाता है। अतः चाप 'न-ल' को तारा का ध्रुवाभिमुख 'शर' (Arrow) भी कहते हैं।
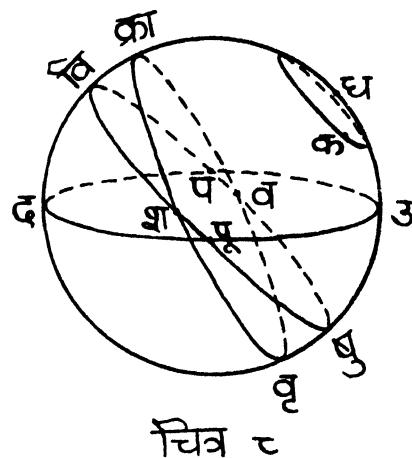
विषुव-वलय के विन्दुओं का स्थान उनकी तथा वसंत सांपातिक विंदु 'व' की दूरी द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसे जब कोण में व्यक्त करते हैं तब इसे तारा का विषुवदंश, अथवा भभोग (Hour Angle) कहा जाता है। सम्पूर्ण वलय में ३६०° अंश होते हैं। एक अंश (१°) में ६० कला तथा एक कला (१') में ६० विकला होती हैं। एक विकला को १" इस चिह्न से व्यक्त करते हैं। भारतीय पद्धति में भभोग को कला में व्यक्त करते थे। ३६०° अंश में नाक्षत्र काल के २४ घंटे होते हैं। अतः एक अंश = ४ मिनट तथा १ कला = ४ सेकेंड। भारतीय काल-गणना में मूर्त्त अर्थात् मापने योग्य समय की सबसे न्यून मात्रा यही ४ सेकेंड है। श्वास लेने तथा छोड़ने के समय के लगभग समान होने के कारण यह प्राण अथवा असु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भभोग की संख्या कला अथवा असु में समान ही होगी। पृथ्वी के विषुव वृत्त पर किन्हीं दो ताराओं के उदयकाल के अन्तर को **चर खंड** (Ascensional Difference) कहते हैं। भारतीय ज्योतिषी लंका को विषुव रेखा पर मानते थे अतः वे चरखंड को लंकोदयांतर भी कहते थे। आधुनिक पद्धति में चरखंड का माप वसंत संपात 'व' से होता है जिसे संचार (Right Ascension) कहा जाता है। चित्र में चाप 'व-प-वि-ल' वृत्त के आधे से कुछ कम है। तारा 'न' का भभोग लगभग १६५° एवं संचार लगभग ११ घंटा है।

आकाशीय माप की उपरोक्त पद्धति नक्षत्रों के लिए ठीक है; पर ग्रहों के स्थान-निरूपण के लिए एक तीसरी पद्धति का व्यवहार होता है। वास्तव में यह पद्धति उपरोक्त पद्धति से प्राचीन है; क्योंकि पहले ग्रहों के स्थान-निरूपण के ही नियम निकाले गये थे। सूर्य के क्रान्ति-वलय 'वक्राशवृ' के धरातल पर खगोल के केन्द्र से होकर यदि लम्ब खींचा जाय और वह खगोल को जिन दो विन्दुओं को पार करे, उन्हें कदम्ब कहते हैं। तारा अथवा ग्रह से क्रान्ति-वृत्त पर कदम्बाभिमुख शर खींच कर तारा के कदम्बाभिमुख शर अथवा विक्षेप (Celestial Latitude) का ज्ञान होता है। शर के क्रान्ति-वलय पर पात-विन्दु का वसंत-संपात से अन्तर माप कर तारा के भोग (Celestial Longitude) का निश्चय किया जाता है। यह पद्धति ग्रहों के लिए विशेष उपयोगी है; क्योंकि वह अपने भ्रमण में क्रान्ति-वृत्त के ही समीप रहते हैं। कदम्बाभिमुख भोग, अथवा संक्षेप में 'भोग', की गणना भी वसंत संपात से प्रारंभ होती है; पर भारतीय पद्धति में इसकी गणना पाँचवीं शताब्दी के सांपातिक विन्दु रेवती नक्षत्र से प्रारंभ करते हैं। वास्तविक वसंत-संपात से इस स्थान के कोणीयांतर को अयनांश कहते हैं। भारतीय पंचांगों में ग्रहों का स्थान रेवती नक्षत्र के योग तारा से आरंभ करके ही दिया होता है। पाश्चात्य पंचांगों में यह गणना उस वर्ष के वसंत-संपात से आरंभ होता है। आधुनिक पंचांगों में ग्रहों के भोग तथा शर सूर्य को केन्द्र मानकर दिये होते हैं। उन्हें सूर्यकेन्द्रीय शर तथा भोग (Heliocentric Latitude and Longitude) कहते हैं। किसी ग्रह की गति प्रधानतः उसके तथा सूर्य के परस्पर स्थान पर निर्भर करती है। इसलिए ग्रहों की गति के ठीक-ठीक माप-जोख में सूर्य-केन्द्रीय शर तथा भोग का विशेष महत्त्व है। इनका मान जहाजी पंचांगों में दिन तथा समय के साथ दिया होता है; क्योंकि इनमें सदा परिवर्त्तन होता रहता है। भभोग-अपक्रम तथा भोग-शर, दोनों ही पर दर्शक के स्थानांतर का कोई

प्रभाव नहीं होता। फिर भी इन दोनों पद्धतियों में बड़ा अन्तर है। चित्र-संख्या ७ में खगोल के विषुव-वलय 'पू-वि-प-षु' तथा सूर्य के क्रान्ति-वलय 'व-क्रा-श-वृ' का परस्पर स्थान

चित्र ७
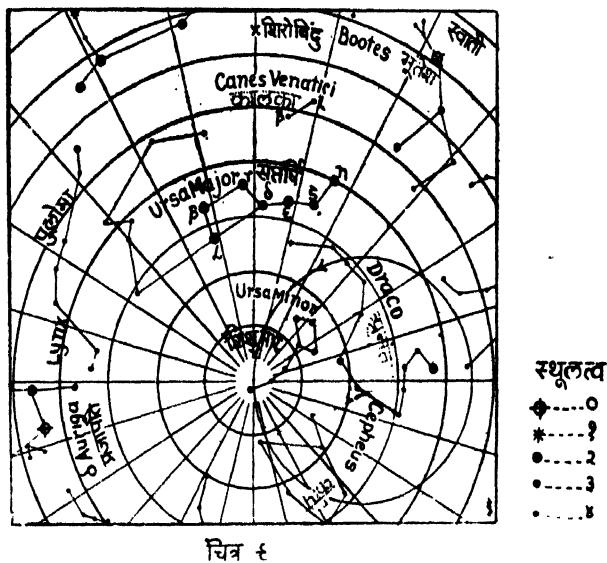
किसी दिन तथा समय-विशेष के लिए दिया गया है। 'व' तथा 'श' क्रमशः वसंत-संपात (Vernal Equinox) तथा शरत्-संपात् (Autumnal Equinox) के स्थान हैं। चित्र में क्रांतिवलय का उत्तर कदम्ब 'क' खगोल के उत्तर ध्रुव 'ध' से ऊपर है। इस दिन तथा समय को दिखाई देनेवाला कोई तारा यदि याम्योत्तर मंडल पर विषुव तथा क्रांतिवलय के बीच हुआ तो उसका अपक्रम (Declination) तो दक्षिण को होगा; परन्तु शर उत्तर को होगा। चित्र-संख्या ८ में क्रांतिवलय के स्थान में अंतर हो गया है। अब

चित्र ८

क्रांतिवलय का उत्तर कदम्ब खगोलिक उत्तर ध्रुव के नीचे है तथा याम्योत्तर मंडल का कोई तारा यदि दोनों वलय के बीच है तो उसका अपक्रम उत्तर को होगा; पर कदम्बाभिमुख शर दक्षिण को होगा।

ग्रहों की गति सूर्यकेन्द्रीय होने के कारण उनका स्थान निरूपण सूर्यकेन्द्रीय भोग-शर द्वारा करना तो स्वाभाविक है। ताराओं के भोग-शर के ज्ञान से लाभ यह है कि

चित्र ६

खगोलिक ध्रुव 'घ' का स्थान प्रतिवर्ष परिवर्तित होता रहता है; पर क्रांतिवलय का कदम्ब प्रायः उसी स्थान पर रहता है। अतः ताराओं के परस्पर स्थान-परिवर्त्तन का ज्ञान उनके भोग-शर से ही अधिक सुलभ है। (देखिए चित्र ६)

तीसरा अध्याय

तारा तथा तारामंडल

रात्रि में आकाश का अवलोकन करने से ही यह स्पष्ट दिखाई देगा कि आकाश के तारागण न तो सभी समान प्रकाशवाले हैं, और न आकाश में समान रूप से बिखरे हैं। इन तारासमूहों की अपनी-अपनी विशेष आकृति है। प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्यों ने इन समूहों में भिन्न-भिन्न पशु, पक्षी अथवा अन्य काल्पनिक आकृतियाँ देखीं। इन नक्षत्रों के उदय अथवा अस्त से ऋतुओं का संबंध होने से, ध्रुव के समीपवर्ती नक्षत्रों के कभी अस्त न होने से तथा उनकी आकृति एवं परस्पर स्थिति से अनेक पौराणिक कथाओं तथा आदिम जातियों की अनेक रीतियों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं कथाओं से नक्षत्रों को लोकजीवन में स्थान मिला। नक्षत्रों का ऋतु-परिवर्त्तन इत्यादि पर प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर लोगों में ऐसा विश्वास हुआ कि मनुष्य के भाग्य का भी आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों से घना संबंध है।

प्राचीन कथाओं में न केवल नक्षत्रों तथा तारामंडलों को ही प्रमुख स्थान मिला है, वरन् अनेक ताराओं के भी अलग-अलग नाम दिये गये हैं। चीन तथा भारत की अपनी-अपनी अलग-अलग पद्धति रही। हाँ, भारतीय तथा यूनानी (यवन-ग्रीक) विद्वानों ने एक दूसरे से बहुत-कुछ सीखा। अरबों ने अपनी मरुभूमि में पथ जानने के लिए नक्षत्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया। इससे उन्हें पीछे चलकर समुद्रयात्रा करने में बड़ी सुविधा हुई तथा वे अपने समय में संसार की सर्वोत्तम नाविक जाति हो सके। आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष में अधिकतर नक्षत्रों तथा ताराओं के नाम वे ही हैं, जो अरबों ने उन्हें दिये थे।

चीन, भारत तथा अरब में अनेक ताराओं तथा नक्षत्रों को लोगों ने पहचाना। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में यत्र-तत्र इनके नाम तथा कुछ ताराओं के शर तथा भोग भी दिये हुए हैं। सूर्य के क्रांतिवलय के बारह भागों के बारह तारासमूहों को राशि तथा चन्द्रमा के भ्रमणमार्ग के २७ समान भागों के तारा-समूहों को चान्द्र नक्षत्र कहा गया। अन्य तारासमूह भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध हुए। उत्तरीय अक्षांशों से दीख पड़नेवाले तारामंडलों की पहली पूरी सूची मिश्री ज्योतिषी तालमी (Ptolemy) ने बनाई। तालमी ने ४८ नक्षत्रों अथवा तारामंडलों की सूची बनाई थी। पीछे चलकर अन्य नक्षत्रों (अर्थात् तारासमूहों) की सूचियाँ बनीं। कुछ थोड़े से ताराओं के अपने नाम रहे। फिर सतरहवीं शताब्दी में बायर (Bayer) नामक पाश्चात्य ज्योतिषी ने किसी तारामंडल-विशेष के ताराओं को प्रकाश के अनुसार ग्रीक वर्णमाला

के अक्षरों से व्यक्त किया। यथा रोहिणी (Aldebaran), वृष (Taurus) राशि का सबसे प्रकाशमान तारा है। अतः उसका नाम अलफाटौरी (α Tauri) हुआ तथा उसी राशि का उससे कम प्रकाशमान तारा 'आर्वन' बीटा टौरी (β Tauri) कहलाया। इस पद्धति में प्रत्येक तारामंडल (Constellation) का अपना निर्दिष्ट क्षेत्र है तथा सारा खगोल ऐसे क्षेत्रों में विभक्त है।

प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत सभी तारे उसी मंडल के होते हैं। दूरवीक्षण यंत्र के आविष्कार से इतने तारे दीख पड़ने लगे कि ग्रीक वर्णमाला के अक्षर अपर्याप्त हुए। उनके समाप्त होने पर संख्याओं के साथ मंडल का नाम देकर ताराओं को व्यक्त किया जाने लगा, यथा—३३ मीन : (33 Piscium) २२ उपदानवी : (22 Andromedae)। सन् १६२२ ई० में एक अन्तरदेशीय ज्यौतिषीय सम्मेलन हुआ था। उसमें तारा-मंडलों की सीमा निर्धारित कर दी गई। तब से इन्हीं मंडलों का व्यवहार ज्योतिषशास्त्र में हो रहा है।

ताराओं के प्रकाश को उनके स्थूलत्व के द्वारा व्यक्त करते हैं। बिना किसी यंत्र के आँखों को जो तारे दिखाई देते हैं, उन्हें ज्योतिषियों ने छः भागों में बाँट रखा है। सबसे देदीप्यमान कोई २० ताराओं का माध्यमिक स्थूलत्व १ माना जाता है तथा आँखों को दिखलाई देनेवाले सबसे सूक्ष्म ताराओं का स्थूलत्व ६ माना जाता है। बीच के तारे क्रमशः २, ३, ४ तथा ५ स्थूलत्व की श्रेणियों में इस प्रकार बँटे हैं कि स्थूलत्व में समान अन्तर होने से प्रकाश समान अनुपात में घटता या बढ़ता है। १ स्थूलत्व के प्रकाश का निश्चय सबसे प्रकाशमान २० ताराओं के माध्यमिक मान से होता है। स्थूलत्व ६ के नक्षत्रों का प्रकाश लगभग इसका १/१०० वाँ अंश होता है। अब यदि स्थूलत्व में १ का अन्तर होने से प्रकाश जिस अनुपात में घटे या बढ़े उसे 'थ' माना जाय तो :

१ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/२ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश = थ

२ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/३ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश = थ

३ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/४ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश = थ

४ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/५ स्थूलत्व के तारा का प्रकाफ = थ

५ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/६ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश = थ

समीकरणों के वामपक्ष तथा दक्षिण पक्ष को अलग-अलग गुना करने से—

१ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश/६ स्थूलत्व के तारा का प्रकाश = थ × थ × थ × थ × थ = थ^{५}

परन्तु जैसा पहले लिखा जा चुका है यह अनुपात १०० के बराबर है। अतः थ^{५} = १००। अतएव छेदविधि (Logarithm) से थ = २·५१२.... ....

ताराओं के प्रकाश का ठीक-ठीक बोध आंशिक स्थूलत्व द्वारा होता है। ऊपर बताई हुई परिभाषा के अनुसार १·१ स्थूलत्व के तथा १·० स्थूल के प्रकाश में वही अनुपात होगा, जो क्रमशः १·२ तथा १·१ स्थूलत्व के नक्षत्रों के प्रकाश में होगा। यदि अनुपात 'प' है तो प × प × प × प × प × प × प × प × प × प = १/२·५१२

छेदविधि (Logarithm) द्वारा 'प' का मान १/१·०६७ होगा, ऐसा सिद्ध किया जा सकता है।

यदि कोई तारा प्रथम स्थूलत्व के तारात्रों से २·५१२....गुना अधिक प्रकाशमान है तो उपर्युक्त विधि के अनुसार उसका स्थूलत्व १ – १=० के हुआ। इससे भी अधिक प्रकाशमान तारात्रों का स्थूलत्व ऋण संख्याओं द्वारा दिखाया जाता है। आकाश के सबसे प्रकाशमान तारा लुब्धक (Sirius) का स्थूलत्व—१·२७ है। बृहस्पति लगभग इतना ही प्रकाशमान रहता है तथा शुक्र इससे भी अधिक। पूर्णचन्द्र का स्थूलत्व लगभग—१२ है तथा सूर्य का—२६·७। आँखों से दिखाई देनेवाले तारात्रों की परमसंख्या लगभग ५००० है जिनमें से ३२०० तो ६ स्थूलत्व के हैं अर्थात् उनका प्रकाश इतना कम है कि उससे कम प्रकाश के तारे विना यंत्र के दिखाई नहीं देते। कोई ११०० ५ स्थूलत्व के हैं। ४२५ तारात्रों का स्थूलत्व लगभग ४ है, १६० तारात्रों का लगभग ३, तथा ६५ तारात्रों का लगभग २। इससे कम स्थूलत्व संख्या के २० तारे हैं जिनके माध्यमिक प्रकाश से स्थूलत्व की गणना आरंभ होती है। किसी स्थान से किसी एक समय खगोल का आधा अंश ही दिखाई देता है। बहुधा वायुमंडल में धूल इत्यादि होने से बहुतेरे तारात्रों का प्रकाश छिप जाता है। अतः चन्द्रमा के अस्त होने पर भी कहीं से किसी समय १५०० से २००० तक ही तारे दिखाई देते हैं।

खगोल का यथार्थ मानचित्र तो किसी गोलाकार पर ही बन सकता है; पर उससे आकाश के तारात्रों को पहचानने के लिए ज्योतिष शास्त्र के यथेष्ट ज्ञान तथा अभ्यास की आवश्यकता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, स्थान तथा समय के अंतर से नक्षत्रों के उन्नतांश तथा क्षितिज चाप (Azimuth) में अंतर हो जाता है। जैसे देशों के मानचित्र के अध्ययन के लिए पृथ्वी को छोटे-छोटे भागों में बाँट लेते हैं, वैसे ही तारात्रों का परिचय प्राप्त करने के लिए खगोल को कई खंडों में विभक्त करने की आवश्यकता होती है। उत्तर भारत के स्थानों से आकाश के उत्तरी भाग, मध्यम भाग तथा दक्षिणी भाग का अलग-अलग अध्ययन करना सुगम होगा। यों तो नक्षत्र-मंडलों की आकृति तथा उनके पारस्परिक क्रम से ही अधिकांश नक्षत्र पहचाने जा सकते हैं ; पर उनका ठीक-ठीक निरूपण तो उनके तारात्रों के संचार तथा अपक्रम से ही हो सकता है। २१ मार्च को सूर्य का संचार ० : शून्य रहता है। पूरे एक वर्ष में इसमें २४ घंटों का अंतर होता है। इस प्रकार किसी दिन-विशेष को सूर्य का संचार क्या है, यह निकाला जा सकता है। यदि इसका मान 'क' घंटा हुआ और यदि किसी तारा का संचार 'ख' घंटा है तो यह तारा सूर्य से (ख—क) घंटा पीछे याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करेगा। इस प्रकार किसी दिन कोई तारा ठीक किस समय याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करेगा, यह निकाला जा सकता है। इसे तारा **का पारगमन काल** कहते हैं। जब तारा इस अवस्था में होगा तब उस स्थान के शिरोबिन्दु से उसकी दक्षिण अथवा उत्तर दिशा में दूरी सहज ही निकाली जा सकती है। पंचांगों में नित्यप्रति सूर्य का संचार भी दिया होता है। इससे ही तारा के याम्योत्तर वृत्त उल्लंघन करने का ठीक-ठीक समय निकल सकता है।

कतिपय उदाहरणों से ऊपर बताई विधि स्पष्ट हो जायगी। सन् १९५२ के जहाजी पंचांग में ता० ११ अक्टूबर को सूर्य का संचार १३ घंटा ४ मिनट ५७ सेकेंड है अर्थात् वसंत संपात बिन्दु के इतनी देर पीछे सूर्य याम्योत्तर वृत्त को पार करता है। उसी वर्ष के पंचांग-

में तारा अलफा हयशिरा (α-Pegasi) का संचार २३ घंटा २ मिनट २२ सेकेंड दिया हुआ है। स्थानीय समय का ज्ञान प्राथमिक भूगोल में बताये विधि के अनुसार देशीय समय तथा दर्शक के देशान्तर से होता है। भारतीय समय ८२½° पूरब देशान्तर का है। अतः यदि दर्शक का देशान्तर द° है तथा देशीय समय स, तो स्थानीय समय हुआ स + (द° – ८२½)४ मिनट। सूर्य तथा तारा अलफा हयशिरा के संचार में ६ घंटा ५७ मिनट २५ सेकेंड का अंतर है। अतएव उस दिन वह तारा सूर्य से इतने समय पश्चात् भी किसी स्थान के याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करेगा। सूर्य स्थानीय समय के अनुसार बारह बजे दिन को याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करता है। स्थानीय समय के अनुसार यह नक्षत्र ६ बजकर ५७ मिनट २५ सेकेंड रात को याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करेगा। इस तारा का अपक्रम १४°५६'४८" उत्तर को है। यदि दर्शक का अक्षांश २५° उत्तर है तो खगोल का विषुव याम्योत्तर मंडल को शिरोविन्दु से २५° दक्षिण हटकर उल्लंघन करेगा। अतः यह नक्षत्र याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करते समय शिरोविन्दु से २५° – १४°५६'४८" = १०°३' १२" दक्षिण को होगा।

इसी भाँति नक्षत्र बीटा-वराह (β-Persei) का संचार ३ घंटा ५ मिनट २ सेकेंड है। यह उस दिन के सूर्य के संचार १३ घंटा ४ मिनट ५७ सेकेंड से कम है। अतः यह तारा सूर्य से पहले ही याम्योत्तर वृत्त का उल्लंघन कर लेगा। दोनों में अंतर ६ घंटा, ५६ मिनट, ४६ सेकेंड का है। अतः यह तारा उस दिन सूर्योदय के पूर्व प्रातः २ बजकर ० मिनट ११ सेकेंड पर याम्योत्तर वृत्त का उल्लंघन कर लेगा। तारा का अपक्रम ४०°४६'२०" उत्तर है। अतएव, २५° उत्तर अक्षांश से देखने पर यह शिरोविन्दु से १५°४६'२०" उत्तर को याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करेगा।

आकाश के प्रमुख ताराओं के पहचान की एक विधि यह जान लेना है कि ठीक समय वह तारा याम्योत्तर मंडल का उल्लंघन करता है तथा शिरोविन्दु से कितना अंश उत्तर अथवा दक्षिण। आकाश के निरीक्षण का सबसे सुगम समय ८ बजे रात्रि है। इसलिए बहुधा ज्योतिष ग्रंथों में ताराओं के इस समय याम्योत्तर वृत्त के उल्लंघन की तिथि दी हुई रहती है। जिन ताराओं का अपक्रम दर्शक के अक्षांश के समान है, वे पारगमन-काल में शिरोविन्दु पर ही रहते हैं। उदाहरणार्थ मेष राशि का सर्वोज्ज्वल नक्षत्र अलफा मेष (α-Arietis) का अपक्रम २३°१७' उत्तर को है। उज्जयनी नगर का अक्षांश भी लगभग इतना ही है। अतएव अपने पारगमन-काल में यह नक्षत्र उज्जयनी से देखने पर ठीक शिरोविन्दु पर ही दिखाई देगा।

ज्योतिषशास्त्र का और कुछ भी ज्ञान प्राप्त करने के पहले प्रमुख तारा-मंडल तथा उनके प्रमुख ताराओं का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। मंडलों के भारतीय नाम के साथ उनके पाश्चात्य नामों का भी ज्ञान आवश्यक है, अन्यथा पाठक को पाश्चात्य जहाजी पंचांगों तथा ज्योतिष अथवा ज्योतिषीय भौतिक विज्ञान की आधुनिक पुस्तकों के व्यवहार तथा अध्ययन से वंचित रह जाना पड़ेगा। पुनः अनेक मंडलों के भारतीय नाम हैं ही नहीं। मंडलों के नामों के साथ उनके ताराओं का ग्रीक अक्षरों द्वारा नामकरण की विधि का ज्ञान भी आवश्यक है; क्योंकि यही ताराओं के नामकरण की आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली है। ग्रीक

वर्णमाला के अक्षरों की सूची नीचे दी हुई है। ग्रीक अक्षरों का ज्ञान ज्योतिष ही नहीं, आधुनिक गणित अथवा भौतिक विज्ञान के अन्य खंडों के अध्ययन के लिए भी नितांत आवश्यक है।

ग्रीक वर्णमाला

α	....	अलफा	ν	....	निउ
β	....	बीटा	ξ	....	छाई
γ	....	गामा	o	....	ओमिक्रोन
δ	....	डेल्टा	π	....	पाई
ϵ	....	एप्सिलन	ρ	....	रो
ς	....	जीटा	σ	....	सिगमा
η	....	ईटा	τ	....	टौ
θ	....	थीटा	υ	....	उप्सिलन
ι	....	अयोटा	ϕ	....	फाई
π	....	कैपा	χ	....	चाई
λ	....	लेम्बडा	ψ	....	साई
μ	....	मिउ	ω	....	ओमेगा
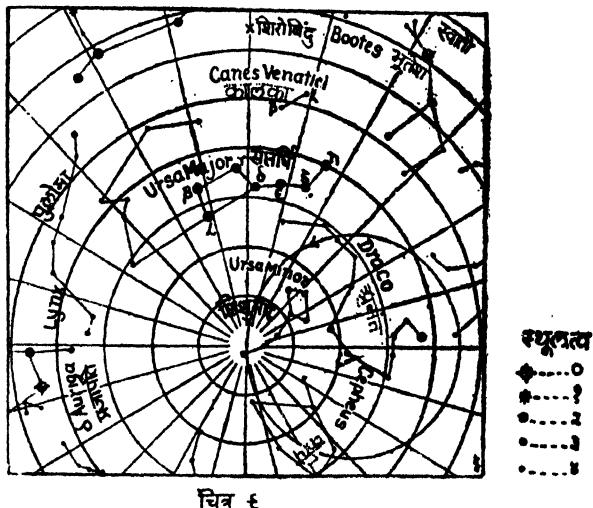
आगे उत्तर भारत से देखे जाने पर तारा-मंडलों की आकृति तथा उनके परस्पर क्रम का वर्णन चित्रों की सहायता से किया जायगा। इनमें तारा-मंडलों के भारतीय नामों के साथ आधुनिक पाश्चात्य नाम भी हैं। ताराओं के भारतीय तथा पाश्चात्य नामों के साथ आधुनिक नामकरण पद्धति के अनुसार उनका क्या नाम है, यह भी बताया गया है। चित्रों में १०° के अंतर पर समाप क्रम वृत्त (Circles of Equal Declination) तथा एक घंटा (अथवा १५°) के अन्तर पर सम संचार (अथवा सम भभोग) रेखाएँ भी दी हुई हैं।

चौथा अध्याय

बसंत, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु की संध्या में आकाश का उत्तर भाग—सप्तर्षि-मंडल—शिशुमारचक्र—शेषनाग—पुलोमा—कालका ।

नक्षत्र-मंडलों में सबसे सुपरिचित सप्तर्षि-मंडल है। इसका कारण यह है कि इसीके सहारे अर्वाचीन ध्रुवतारा की पहचान होती है। और भी, गर्मी के महीनों में जब सूर्यास्त के बाद लोग बहुधा बाहर रहते हैं, उन्हीं दिनों तब यह मंडल आकाश में अपने सर्वोच्च स्थान पर रहता है। चित्र संख्या ९ में २१वीं मई को लगभग ८ बजे रात्रि को आकाश के उत्तर भाग का रूप दिखाया गया है। चित्र के क्षितिज तथा शिरोविन्दु २५° उत्तर अक्षांश के किसी भी स्थान के लिए सत्य होंगे। चित्र-संख्या १० तथा ११ में कुछ अन्य तिथियों को आकाश के उत्तर भाग का रूप दिखाया गया है। उत्तरी गोलार्ध में ऐसा कोई देश नहीं है, जिसमें इस मंडल को प्रधानता न मिली हो। भारत में इस मंडल के सात तारे प्रत्येक मन्वन्तर के सात ऋषियों के स्थान माने गये। वर्त्तमान स्वायम्भुव मन्वन्तर के सात ऋषि हैं—मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। (मरीचिरंगिराऽत्रिः पुलस्त्य पुलहक्रतुः सारुन्धतिवसिष्ठश्च एते सप्तर्षयः स्मृताः)। वसिष्ठ के समीपवर्त्ती सूक्ष्म तारा उनकी पत्नी अरुन्धती है। इन सात ऋषियों के स्थान क्रमशः पूर्व भाग से इस प्रकार हैं—मरीचि, अरुन्धति के सहित वसिष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु।

(पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितौ वसिष्ठोऽस्मात् तस्यांगिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च पुलहक्रतुरिति भगवानसन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात् तत्र वसिष्ठ मुनिवरमुपाश्रिता-रुन्धती साध्वी। (वराहमिहिर बृहत्संहिता १३।६)

चित्र ९
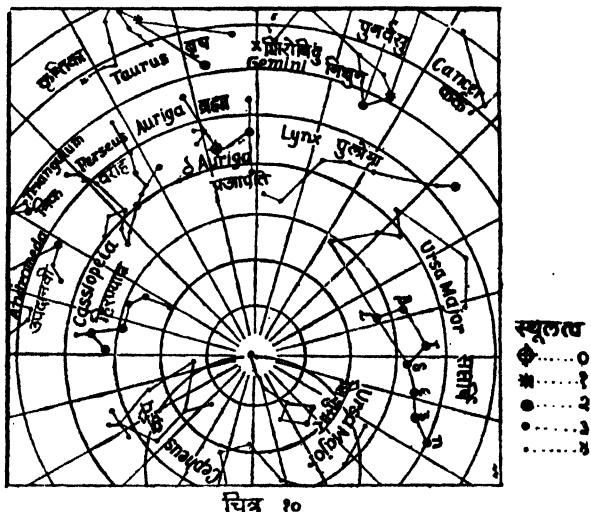
२१ मई आठ बजे रात्रि, २१ अप्रैल दस बजे रात्रि, २१ मार्च बारह बजे रात्रि, २१ फरवरी २ बजे रात्रि अथवा २१ जनवरी ४ बजे प्रातः को आकाश का उत्तर भाग।

पाश्चात्य देशों में इस मंडल को बृहदृक्ष-मंडल कहते हैं। अनेक विद्वानों के मत से इसका कारण यह हुआ कि संस्कृत में ऋक्ष शब्द का अर्थ रीछ अथवा भालू तथा चमकनेवाला अर्थात् चमकीला तारा दोनों ही है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू का यह मत था कि रीछ ही ऐसा जीव है जो बर्फीली उत्तर दिशा में इतनी दूर जा सके और इसी कारण प्राचीन काल में लोगों ने इस मंडल में भालू के आकार की कल्पना की थी।

प्राचीन ईरान में बैलों की पूजा होती थी और वहाँ इस मंडल को हप्तोइरिंग (सात बैल) का नाम दिया गया था। मंडल का अरबी नाम नाऽश है, जिसका अर्थ होता है—मृत को रखने का बक्स। सातों नक्षत्रों का नाम 'बिनतुल नाऽश अलकुबरा' अर्थात् महान मृत पेटी के साथ रुदन करनेवाली बालाएँ, है। चीन में इस मंडल को स्वर्ग का मंत्रि-मंडल कहा गया है। प्राचीन ब्रिटेन में यह राजा आर्थर (King Arthur) के गोलमेज (Round Table) का स्थान था। वेल्श भाषा में आर्थ (Arth) ऋक्ष (भालू) को कहते हैं तथा उथिर (Uthir) का अर्थ विलक्षण होता है।

पाश्चात्य बृहदृक्ष-मंडल में सात से अधिक तारे हैं। मनुस्मृति में भी सात नहीं, वरन् दस ऋषियों के नाम आये हैं (मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहंक्रतुं। प्रचेतसं वासिष्ठं च भृगुं नारद मेव च)। इस मंडल के प्रमुख ताराओं के आधुनिक पद्धति के अनुसार ग्रीक
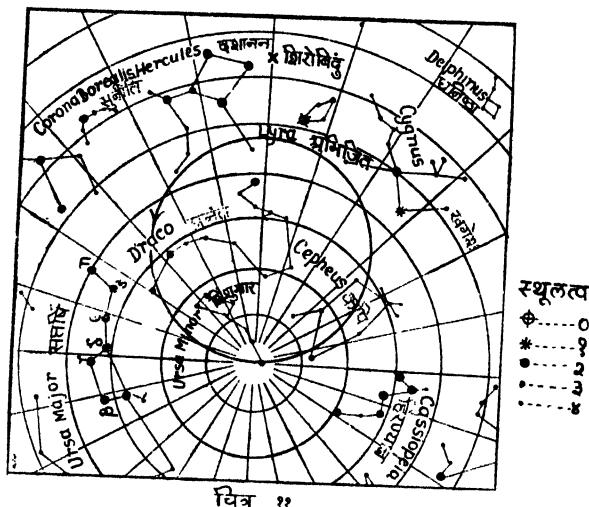
चित्र १०

२१ फरवरी आठ बजे रात्रि, २१ जनवरी १० बजे रात्रि, २१ दिसंबर १२ बजे रात्रि, २१ नवंबर २ बजे रात्रि अथवा ४ बजे प्रातः को आकाश का उत्तर भाग।

अक्षरों द्वारा सूचित नाम तो चित्र में दिये हुए हैं। α—बृहदृक्ष का पाश्चात्य नाम दुब्ब (Dubb) अरबों के द्वारा दिये नाम 'थहर अलदुब्ब अल अकबर' (विशाल ऋक्ष की पीठ) का संक्षिप्त रूप है। चीनी इसे 'तियनचू' अर्थात् आकाश की ध्रुवा कहते हैं। भारतीय सप्तर्षियों में यह क्रतु है। क्रतु तथा पुलह (β—बृहदृक्ष) दोनों ध्रुव तारा की सीध में हैं तथा इन्हें देखकर ही लोग ध्रुव तारा को पहचानना सीखते हैं।

β बृहद्दृक्ष (β-उर्सा मेजरिस-पुलह) का लोक प्रिय पाश्चात्य नाम मिराक (Mirak) है। यह अरबों के दिये नाम 'अल मराक' (ऋक्ष की कमर) का रूपान्तर है। γ बृहद्दृक्ष पुलस्त्य तारा तथा δ—बृहद्दृक्ष अत्रि है। α एवं β, अर्थात् क्रतु तथा पुलह में ५° का अन्तर है एवं α तथा δ अर्थात् क्रतु तथा अत्रि में १०° का अन्तर है। ϵ, ς तथा η बृहद्दृक्ष क्रमशः अंगिरा, वसिष्ठ तथा मरीचि है। वसिष्ठ के पास का सूक्ष्म तारा अरुन्धती है। प्राचीन भारत में नव विवाहित दम्पती के लिए वसिष्ठ तथा अरुन्धती के

चित्र ११

२१ अगस्त ८ बजे रात्रि, २१ जुलाई १० बजे रात्रि, २१ जून १२ बजे रात्रि, २१ मई २ बजे रात्रि अथवा २१ अप्रैल ४ बजे प्रातः को आकाश का उत्तर भाग।

दर्शन करने की प्रथा थी। वसिष्ठ का पाश्चात्यनाम 'मिज़ार' अरबों का दिया हुआ है। अरबी में इसका अर्थ 'कमरबंद' है। अरुन्धती का पाश्चात्य नाम 'अलकौर' (Alcor) स्पष्टतः अरबों का ही दिया हुआ है। यूरोप में भी अलकौर का देखना दृष्टि-शक्ति की परीक्षा थी। Vidit Alcor at non Lunam plenam अर्थात् अलकौर को देखे पर पूर्णचन्द्र को नहीं—यह कहावत उनके लिए प्रयोग में आती थी जो छोटी-छोटी बातों पर ध्यान तो देते; पर बड़ी बातों पर नहीं।

पुलह तथा क्रतु की सीध में क्रतु से कोई २८° हटकर ध्रुव तारा है। यह खगोल के उत्तर ध्रुव के इतना समीप है कि आँखों को यह तारा ध्रुव के स्थान पर ही दीख पड़ता है। खगोल का ध्रुव स्थिर नहीं है। चन्द्रमा तथा सूर्य के आकर्षण से पृथ्वी की ध्रुवा घूमती रहती है, जैसे तिरछा होकर नाचते हुए लट्टू की ध्रुवा पृथ्वी के आकर्षण से घूमती है। इस कारण खगोल के ध्रुव का स्थान भी बदलता रहता है। चित्र-संख्या ९, १० तथा ११ में खगोल के उत्तर ध्रुव का परिक्रमा-वृत्त दिखाया गया है। एक पूरी परिक्रमा में कोई २५८०० वर्ष लगते हैं। अब से कोई १२००० वर्ष बाद खगोल का उत्तर ध्रुव उज्ज्वल अभिजित् नक्षत्र के समीप रहेगा। खगोल के इस भ्रमण-वृत्त का केन्द्र-विन्दु सूर्य के क्रांति

वृत्त से ६०° की दूरी पर है। यह प्रायः स्थिर है। इसे भारतीय ज्योतिष में 'कदम्ब' कहते हैं। इस विन्दु पर कोई तारा नहीं है। अतः इसका रंग आकाश का रंग अर्थात् कृष्ण है।

प्राचीन भारत में खगोल के उत्तर ध्रुव का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह स्थान भगवान विष्णु ने महात्मा ध्रुव को उनकी तपस्याओं के पुरस्कार रूप में दिया। यही तारा प्राचीन अरब का 'अल किब्ल' है; क्योंकि इसे देख कर काबा की निश्चित दिशा का ज्ञान हो जा सकता था। आधुनिक ध्रुवतारा जिस मंडल में है, उसे पाश्चात्य देशों में 'उरसा माइनर' (Ursa Minor) अर्थात् लघु ऋक्ष तथा भारतीय ग्रंथों में शिशुमार (शिशुमार जल-जंतुविशेष) चक्र कहा गया है।

तारामयं भगवतः शिशु माराकृतिः प्रभोः
दिविरूपं हरेर्यत्तु तस्यपुच्छे स्थितो ध्रुवः
—(विष्णुपुराण २।६।१)

चित्र-संख्या ९ में यदि ध्रुव तारा तथा सप्तर्षि-मंडल के मरीचि तारा को सीधे-सीधे मिलाया जाय, तो उस लकीर से कुछ पूरब हट कर शिशुमारचक्र के जय तथा विजय—ये दोनों मुख्य तारे दीख पड़ेंगे। शिशुमारचक्र का सर्वोज्ज्वल तारा तो स्वयं ध्रुव (α लघुऋक्ष) है तथा उससे कम उज्ज्वल क्रमशः जय (β—लघुऋक्ष) तथा विजय (γ लघुऋक्ष) है। उत्तर भारत में जय तथा विजय कभी क्षितिज के नीचे नहीं जाते। गाँवों में रात को इनके सहारे समय का अनुमान करने की प्रथा अबतक चली आती है। चित्र-संख्या ९, १० तथा ११ के अध्ययन तथा थोड़े अभ्यास से पाठक भी ऐसा करने लग जा सकते हैं। सातवीं मई को रात्रि के बारह बजे जय और विजय ध्रुव तारा के ठीक ऊपर होंगे। एक महीना बाद ये दोनों तारे इससे दो घंटा पहले ही इस स्थान पर आजायेंगे तथा इससे एक महीना पूर्व यह अवस्था दो घंटा पीछे होगी। इन्हें ध्रुव की पूरी परिक्रमा में २४ घंटे लगते हैं। अब यदि तिथि का पता हो तो जय तथा विजय का स्थान देखकर सहज ही समय का ज्ञान हो सकता है। इस मंडल का अरबी नाम है—'अलदुब्ब अल असगर' (लघु ऋक्ष)। इसके पुच्छ के तीन तारात्रों को, जिनमें आधुनिक ध्रुव है, प्राचीन अरब देशों में 'बिनतुलनाऽशअल सुगरा' (लघु मरणपेटी के समक्ष रुदन करने वाली बालाएँ) कहते थे।

आज से कोई २५०० वर्ष पूर्व खगोल का उत्तर ध्रुव शिशुमार चक्र के जय तारा के समीप था; परन्तु 'विष्णुपुराण' के लिखने के समय तक वह आधुनिक ध्रुवतारा के समीप आ गया था।

चित्र-संख्या ११ में शिशुमारचक्र के ऊपर शेषनाग अथवा अनंत-मंडल का स्थान दिखाया गया है। इस मंडल के तारे सूक्ष्म हैं; पर उनका पारस्परिक कम ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट एक बृहदाकार वक्र सर्प के समान दीख पड़ता है। इसके चमकीले तारे सर्प के शिर के समीप हैं जहाँ उसकी आँखें होनी चाहिए। इतनी दूरी तक विस्तृत तथा ध्रुव के समीपवर्त्ती होने के कारण ऐसा जान पड़ता है, मानों यह मंडल अनन्त है; क्योंकि इस मंडल का अस्त होता नहीं दीखता। ध्रुव के चारों ओर लिपटे रहने से इस मंडल के विषय में समुद्र-मंथन में रज्जु का काम करने की कथा चल निकली। पवित्र उत्तर दिशा में भगवान्

विष्णु का स्थान है, अतः यह मंडल विष्णु का आधार माना गया। पौराणिक काल में शिशुमारचक्र प्रलय काल के लिए पुण्यात्माओं का निवास-स्थान माना जाता था। प्रलय काल में जब शेषनाग के मुख से अग्नि निकलने लगती है तथा उसकी लपटें शिशुमारचक्र तक पहुँचने लगती हैं तब यह पुण्यात्मा ध्रुव स्थान से होकर साक्षात् ब्रह्मलोक में प्रवेश कर जाते हैं।

वैश्वानरं याति विहायसा गतः
सुषुम्णया ब्रह्म पथेनशोचिषा ॥
विधूत कल्कोऽथ हरेरुदस्तात्।
प्रयातिचक्रं नृप शैशुमारम् ॥

अथोऽनंतस्य मुखानलेन।
दंदह्यमानं सनिरीक्ष्य विश्वम् ॥
निर्याति सिद्धेश्वर युष्टधिष्ण्यम्।
यद्द्वै परार्ध्यं तदुपार मेष्ठ्यम् ॥

(श्रीमद्भागवत २/८/२४ ; २/८/२६)

इस मंडल का पाश्चात्यनाम 'ड्राको' (सर्प) है। आदम तथा हव्वा (Adam and Eve) को पथभ्रष्ट करने वाला सर्प यही है। ईरान में इस मंडल को 'अज़दह' अर्थात् 'मनुष्य भक्षी सर्प' कहते थे। अरबी में इसे 'अलहय्या' सर्प कहा गया तथा चीन में इसका नाम त्सीकुंग (स्वर्ग प्रासाद) हुआ। इस मंडल के सबसे प्रकाशमान तारा (α-शेषनाग α-Draconis) को प्राचीन मिस्र में बड़ी प्रधानता मिली जब कि खगोल का उत्तर ध्रुव इसके अत्यन्त समीप था। मिस्र के अनेक पिरामिडों में आकाश की ओर देखने के छिद्र इस प्रकार बने कि उनमें से यह तारा रात-दिन में किसी भी समय दिखाई देता था। शेषनाग की कुंडली के अन्तर्गत ही सूर्य के क्रान्ति-वृत्त का कदम्ब है। इसके चतुर्दिक् खगोलिक ध्रुव कोई २५८०० वर्ष में एक बार भ्रमण करता है। कदम्ब ही कृष्णवर्ण शेषशायी विष्णु का स्थान है।
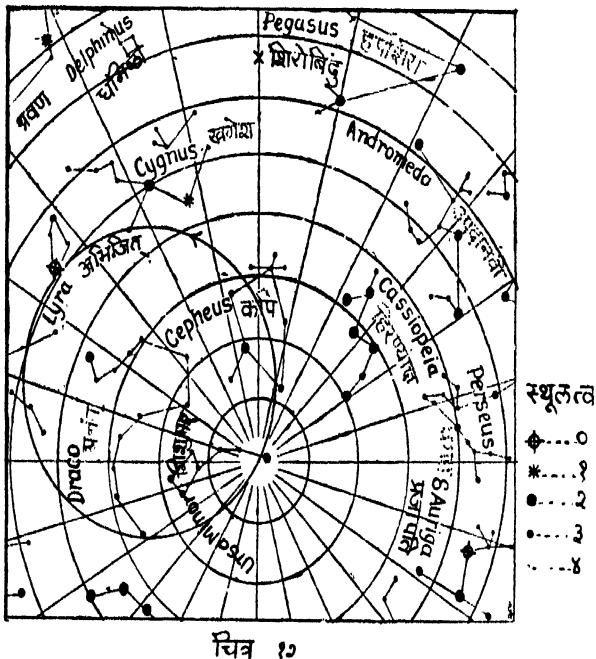
बृहदृक्ष-मंडल (सप्तर्षि) के दाहिने-बायें पुलोमा तथा कालका मंडल के तारे हैं। इनके पाश्चात्य नाम क्रमशः Lynx (लिंक्स) तथा Canes Venatici (केनिस वेनाटिसी) हैं। कालका तथा पुलोमा, पुराणों के अनुसार वैश्वानर की दो पुत्रियाँ थीं। इनकी अन्य दो बहनें उपदानवी (Andromeda एण्ड्रोमीडा) तथा हयशिरा (Pegasus पेगेसस) हैं। उपदानवी का व्याह हिरण्याक्ष से हुआ था तथा हयशिरा का राजर्षि क्रतु से। पुलोमा तथा कालका—दोनों से ही प्रजापति कश्यप ने व्याह किया।

वैश्वानरसुतायाश्चय चतस्रचारु दर्शनाः उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा। उपदानवी हिरण्याक्ष क्रतुः हयशिरानृप। पुलोमा कालका चद्वे वैश्वानर सुते तुकः। उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्म चोदितः। (भागवत ६/६/३२-३३)

पाँचवाँ अध्याय

शरत्, हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं की संध्या में आकाश का उत्तर भाग—कपि (गणेश)—हिरण्याक्ष—वराह—उपदानवी।
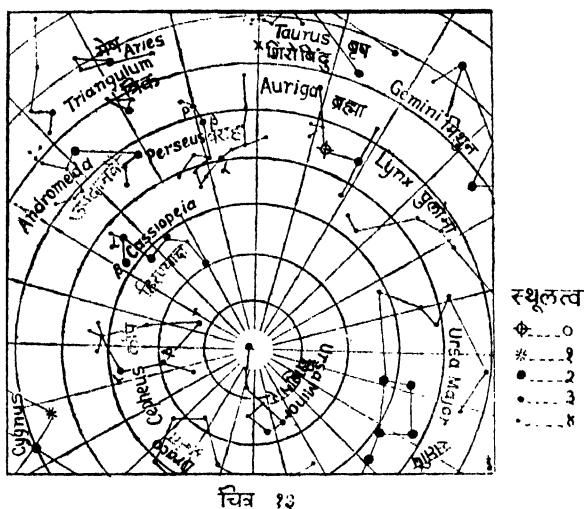
जिस प्रकार वसंत, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में रात्रि के पूर्वांश में आकाश के उत्तर भाग का सबसे आकर्षक मंडल सप्तर्षि है, उसी प्रकार शरत्, हेमंत तथा शिशिर में हिरण्याक्ष अथवा काश्यपीय (Cassiopeia) मंडल है। चित्र-संख्या १२ तथा १३ में २१ अक्तूबर तथा २९ जनवरी आठ बजे रात्रि की अवस्था दी हुई है। यह मंडल लगभग ७ दिसंबर को आठ बजे रात्रि के समय पारगमन करता है अर्थात् याम्योत्तर रेखा का उल्लंघन करता है।

चित्र १२

२१ अक्तूबर आठ बजे रात्रि, २१ सितम्बर १० बजे रात्रि, २१ अगस्त १२ बजे रात्रि, २१ जुलाई २ बजे रात्रि अथवा २१ जून ४ बजे प्रातः को आकाश का उत्तर भाग।

यूरोप में न तो सप्तर्षिमंडल का कभी अस्त होता है और न हिरण्याक्ष का तथा दोनों ही याम्योत्तर रेखा को २४ घंटों में दो बार उल्लंघन करते हैं। कश्यप प्रजापति का पुत्र होने के कारण हिरण्याक्ष का नाम काश्यपीय हुआ। यह राक्षस पृथ्वी को चुराकर पाताल ले गया था तथा

वहाँ से स्वयं भगवान् विष्णु वराह रूप धारण करके पृथ्वी को ऊपर ले आये। वराह

चित्र १३

२१ जनवरी ८ बजे रात्रि, २१ दिसंबर १० बजे रात्रि, २१ नवंबर १२ बजे रात्रि, २१ अक्तूबर २ बजे रात्रि अथवा २१ सितंबर ४ बजे प्रातः को आकाश का उत्तर भाग।

(पाश्चात्य Perseus पर्सिअस) मंडल हिरण्याक्ष के पास ही है। वराह तथा पृथ्वी की कथा बड़ी पुरानी है। कदाचित् पौराणिक उपाख्यानों में सबसे प्राचीन यही है।

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्स इमामपश्यत्तां वराहो भूत्वाऽहरत्तां विश्व कर्माभूत्वा व्यमार्ट् सा प्रथत साऽपृथिव्यभवत् तत्पृथिव्यै: पृथिवित्वं। (तैत्तिरीय संहिता ७/१/५)

वराह (पर्सिअस) हिरण्याक्ष का मर्दन करके अपनी कराल दाँतें उसकी ओर निकाले खड़ा है।

हिरण्याक्ष के समीप उसकी पत्नी उपदानवी (Andromeda) विलाप कर रही है। चित्र-संख्या ४-१ में कपि (पाश्चात्य Cepheus सिफियस) मंडल का स्थान दिखाया गया है। भगवान् के वर से कपि हनुमान हिमालय से उत्तर यहीं निवास करते माने गये हैं। ध्रुव के समीपवर्त्ती होने के कारण इस मंडल से मंदगामी गणेश की कथा भी निकली। ध्रुव स्थान के महत्त्व के कारण उन्हें पूजा में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

कपि, हिरण्याक्ष, उपदानवी तथा वराह चारों ही आकाश-गंगा की सीमा के अन्तर्गत हैं। यह पाश्चात्य देशों में क्षीरपथ (Milky way) के नाम से प्रसिद्ध होकर भगवान् विष्णु के निवास स्थान 'क्षीरसागर' की क़था का कारण हुआ। आधुनिक यंत्रों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि यह प्रकाशित वलय अत्यन्त सूक्ष्म तारों की सघनता से वैसा दीख पड़ता है। इसके विषय में और आगे चलकर लिखा जायगा।

कपिमंडल के तारे γ तथा α क्रमशः ईसवी सन से २१००० तथा १६००० वर्ष पहले के ध्रुव तारे हैं तथा फिर क्रमशः ५५०० तथा ७५०० ईसवी में खगोल का उत्तर ध्रुव इनके समीप आ जायगा। प्रागैतिहासिक काल से ही इस मंडल में भारत-निवासी जातियों ने वानर तथा मंदगति हस्तिरूप गणेश को देखा। इस मंडल के अरबी नाम 'किफ़ौस' तथा 'फिक़ौस' इसके ग्रीक नाम के ही रूपान्तर हैं। इसी भाँति हिरण्याक्ष-मंडल का अरबी नाम सिंहासन पर बैठी रानी कैसिओपिया का स्मरण करके 'अलधात अल कुरसी' रखा गया अर्थात् सिंहासन पर बैठी औरत। पर उपदानवी का अरबी नाम 'अलमरह अलमुसल सलाह' है, जिसका अर्थ होता है—जंजीर में बँधा हुआ दरिआई घोड़ा। हिरण्याक्ष तथा सप्तर्षि ये दोनों ध्रुव से एक दूसरे के विपरीत हैं। जब एक मंडल ऊपर उठता रहता है तब दूसरा नीचे जाता रहता है। इसी कारण हिरण्याक्ष मंडल को वैवस्वत मन्वन्तर का सप्तर्षि भी मानते हैं। जब ७५०० ईसवी सन् में खगोल का उत्तर ध्रुव कपि तक पहुँच जायगा तब हिरण्याक्ष मंडल के दो सर्वोज्ज्वल तारे α तथा β, ध्रुव की सीध में होंगे जैसे अभी पुलह तथा क्रतु (α तथा β वृहदृक्ष) हैं।

वराह-मंडल के दो सर्वोज्ज्वल तारे α तथा β चित्र में दिखाये गये हैं। इनमें से β में यह विचित्रता है कि इसका प्रकाश स्थिर नहीं रहता। इसका स्थूलत्त्व कोई दो दिनों तक लगभग २ के समान रहता है। फिर मंद ज्योति होकर यह ३ या ३॥ घंटों में ही ४ स्थूलत्व का हो जाता है। लगभग बीस मिनट तक वैसा रहकर यह फिर ३॥ घंटों में २ स्थूलत्व का हो जाता है। इसका पाश्चात्य नाम 'अलगोल' (Algol) अरबी अलगुल का रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है जंगलों का राक्षस। β वराह के पास ही २° दक्षिण को हटकर जो नक्षत्र है, उसे ρ वराह कहते हैं। इस नक्षत्र का प्रकाश भी बदलता रहता है; पर उसका स्थूलत्व ३·३. से ४·१ के बीच में रहता है जहाँ अलगुल का स्थूलत्व २·२ से ३·५ के बीच में रहता है। कभी तो β वराह (अलगुल) ρ वराह से अधिक प्रकाशमान रहता है और कभी समान या कम। अब तो अनेक तारे ऐसे मिले हैं, जिनका प्रकाश अस्थिर है; पर प्राचीनकाल में सर्वप्रथम इसी तारा के विषय में लोगों को यह ज्ञान हुआ।

छठा अध्याय

ग्रीष्म की संध्या को आकाश का मध्यभाग—मिथुन-मृगव्याध, शुनी, कर्क, हृत्सर्प, सिंह, कन्या, हस्त, ईश, स्वाती, तुला, सुनीति, दशानन, सर्पमाल, वृश्चिक।
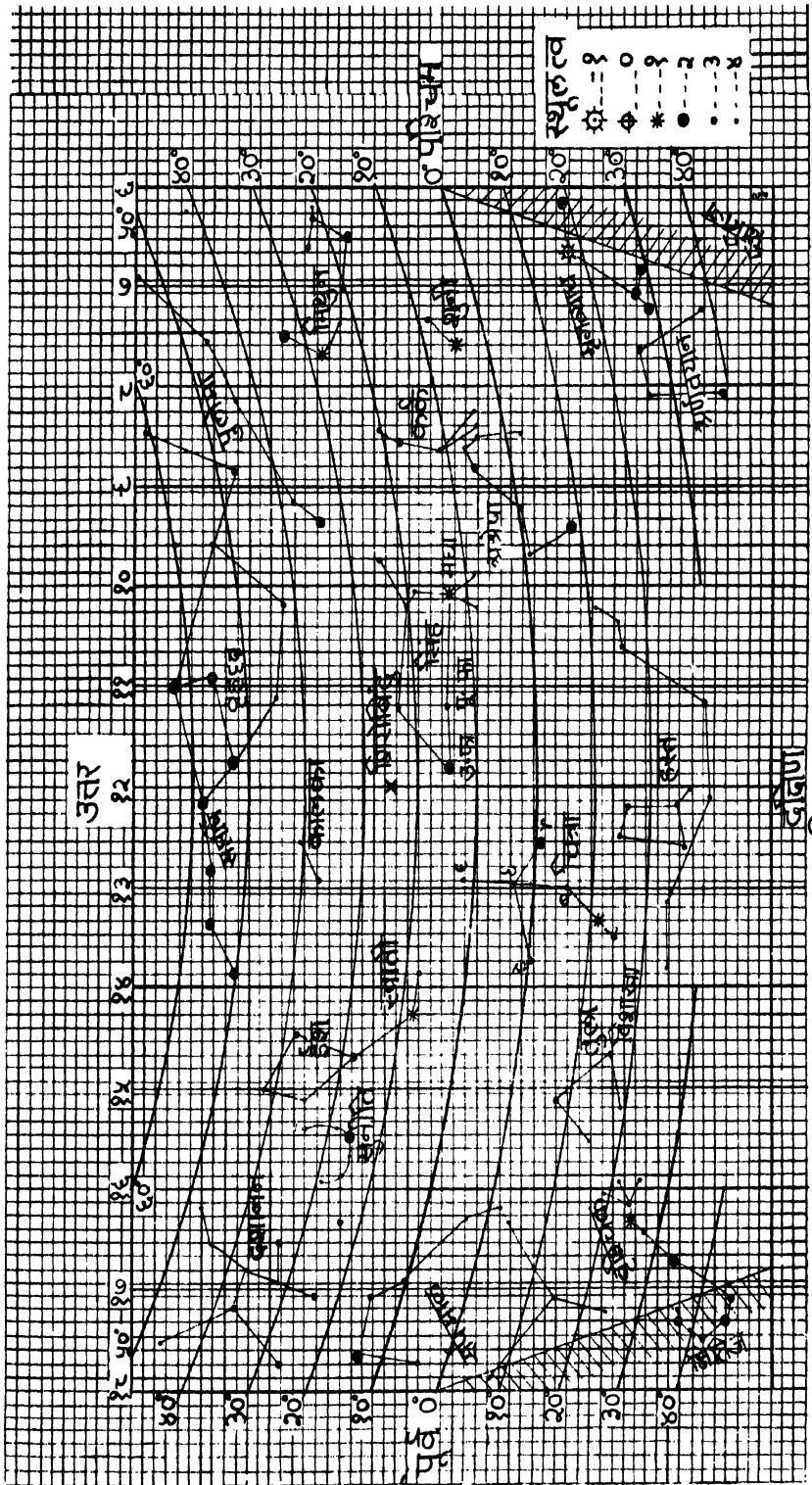
चित्र-संख्या १४ में २१ मई आठ बजे रात्रि को आकाश का मध्यभाग दिखाया गया है। शिरोविन्दु का स्थान तथा ताराओं का पारस्परिक क्रम, लगभग २५° उत्तर अक्षांश के लिए ठीक होंगे। चित्र से तारा-मंडलों को पहचानने के लिए पूरब दिशा में देखते समय चित्र का पूर्व भाग नीचे रखना चाहिए, वैसे ही पश्चिम दिशा में देखते समय चित्र का पश्चिम भाग भी। शिरोविन्दु के समीप के मंडलों को पहचानने के लिए एक बार चित्र को सिर के ऊपर रख कर उत्तर-दक्षिण दिशाओं को ठीक-ठीक करके देख लेने पर फिर आकाश की ओर देखना चाहिए।

पश्चिम दिशा में क्षितिज के समीप उत्तर से दक्षिण को मिथुन, शुनी तथा मृगव्याध क्रमशः उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में है। मृगव्याध-मंडल का अत्युज्ज्वल लुब्धक तारा क्षितिज के समीप प्रायः अस्त हो रहा होगा। एक शुक्र ग्रह ही जिसे संध्या तारा अथवा भोर को तारे के रूप में सब पहचानते हैं, लुब्धक से अधिक प्रकाशमान् हैं। बृहस्पति ग्रह का प्रकाश भी प्रायः लुब्धक नक्षत्र के समान हो सकता है। सन् १९५५ ईसवी में बृहस्पति मिथुन राशि में होगा तथा २१ मई को आठ बजे रात्रि के समय लुब्धक के साथ-साथ ही क्षितिज के पश्चिम विन्दु से कोई २०° उत्तर हटकर दिखाई देगा।

मिथुन राशि का नाम इस मंडल के पूर्व भाग में स्थित दो प्रकाशमान् ताराओं से पड़ा। इनमें एक अधिक प्रकाशमान् है और एक कम। ये दोनों तथा शुनी मंडल के दो तारे मिलकर पुनर्वसु नक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा चन्द्रमा के २७ (अथवा २८) स्थानों में से एक के द्योतक हैं। मिथुन राशि सूर्य के बारह राशिओं (अथवा स्थानों) में से एक है।

मिथुन, शुनी तथा मृगव्याध-मंडल के तारे लगभग एक सीध में अपनी विचित्र ही छटा दिखाते हैं।

शुनी तथा मृगव्याध-मंडल के पाश्चात्य नाम क्रमशः महाश्वान (कैनिस मेजर) तथा लघुश्वान (कैनिस माइनर) हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण, अथर्ववेद संहिता तथा ऋग्वेद संहिता में भी दो दिव्यश्वानों का वर्णन आया है। इनमें से महाश्वान को मृगव्याध भी कहा गया है, जिसने प्रजापति (काल पुरुष) को, अपनी पुत्री रोहिणी का अनुचित व्यवहार के लिए पीछा करते

चित्र १४

२१ मई आठ बजे रात्रि, २१ अप्रैल १० बजे रात्रि, २१ मार्च १२ बजे रात्रि, २१ फरवरी २ बजे रात्रि अथवा २१ जनवरी ४ बजे प्रातः को आकाश का मध्य भाग।

देखकर, उनपर वाण चलाया था। यह वाण अभी तक कालपुरुष के हृदय में विद्ध है। कालपुरुष-मंडल मृगव्याध से उत्तर पश्चिम हटकर है तथा रोहिणी उससे भी उत्तर पश्चिम। यह सब मंडल क्षितिज से नीचे होने के कारण इस चित्र में दिखाई नहीं देते। पर २१ फरवरी को ८ बजे रात्रि के समय यह सभी मंडल तथा तारे याम्योत्तर वृत्त के समीप होंगे। इनका विस्तार-पूर्वक वर्णन अगले अध्याय में चित्र-संख्या १६ के साथ होगा। शिरोविन्दु के समीप कोई दस अंश दक्षिण हटकर सिंहराशि का उत्तर फाल्गुनी तारा है। सिंहराशि के पश्चिम-दक्षिण भाग में इस राशि का सर्वोज्ज्वल तारा 'मघा' है जो चान्द्र नक्षत्रों में से एक है। मंडल के पूर्व भाग में जो तीन उज्ज्वल तारे आपस में त्रिभुज बनाते हैं, उनमें पश्चिमवर्त्ती दोनों मिल कर पूर्वफाल्गुनी तथा पूर्ववर्त्ती तारा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सिंहराशि तथा शुनी-मंडल के बीच हृत्सर्प (हाइड्रा) तथा कर्क-मंडल हैं जो अश्लेषा तथा पुष्य (तिष्य) नक्षत्र के नाम से भी प्रसिद्ध है। कर्क सूर्य की एक राशि है। मिथुन कर्क तथा सिंहराशि के अन्तर्गत ही पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी तथा उत्तर-फाल्गुनी नक्षत्र हैं।

शिरोविन्दु से लगभग ४५° दक्षिण हटकर हस्त नक्षत्र (Corvus-कौरवस मंडल) है। शिरोविन्दु से कोई २०° दक्षिण-पूर्व हटकर कन्या राशि है। कन्याराशि का सर्वोज्ज्वल तारा चित्रा चन्द्रमा के नक्षत्रों में से एक है। कन्याराशि के दो ताराओं का ध्रुवक तथा अपक्रम प्राचीन ज्योतिषग्रंथ सूर्य-सिद्धान्त में दिया हुआ है। यह हैं 'आप' तथा 'अपांवत्स' (आधुनिक δ तथ θ)/शिरोविन्दु से सीधे ३०° पूरब हटकर उज्ज्वल स्वाती तारा है। भारतीय लोक-कथा के अनुसार ग्रीष्मऋतु में इसे देखकर चातक इतना मुग्ध होता है कि फिर जबतक सूर्य इसी नक्षत्र में पहुँच कर वर्षा नहीं कराते तबतक वह प्यासा ही रहता है। स्वाती नक्षत्र के इष्ट देवता शिव (ईश) हैं। यह जिस तारा-मंडल में हैं, उसे भारतीय ग्रंथों में ईश कहा गया है (**ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्** (गीता ११/१५)। यह मंडल जिस कोण में उदय होता है, उसे (पूरब-उत्तर कोण को) ईशान कोण कहते हैं।

कन्या राशि से दक्षिण-पूर्व दिशा में क्षितिज से प्रायः ४५° ऊपर तुला राशि है। इसी राशि के दो उज्ज्वल तारे विशाखा नक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। तुला राशि से भी दक्षिण-पूर्व क्षितिज से लेकर कोई ३०° ऊपर तक फैला हुआ वृश्चिक-मंडल है, जो सूर्य की एक राशि है तथा जिसमें पश्चिम से आरम्भ कर क्रमशः अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूला नामक चान्द्र नक्षत्रों के तारे हैं। २५° उत्तर अक्षांश से देखने पर इस दिन तथा समय को वृश्चिक राशि का 'मूला' अंश क्षितिज के नीचे ही होगा तथा कोई आध घंटे पश्चात् उसका उदय होगा। मंडल का सबसे प्रकाशमान् तारा रक्तवर्ण ज्येष्ठा नक्षत्र है, जो पाश्चात्य ज्योतिष में मंगल ग्रह के समान रंगवाला होने के कारण एन्टारिस (Antares) अर्थात् प्रतिद्वन्द्वी कहा गया है। इससे पश्चिम के तारे अनुराधा नक्षत्र तथा पूर्व के तारे मूला नक्षत्र के स्थान हैं।

कन्या, तुला तथा वृश्चिक राशियों के बीच हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूला नामक चान्द्र नक्षत्र हैं।

चित्र में बताये गये समय पर मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला तथा वृश्चिक राशि एवं पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूला नक्षत्रों के तारे दिखाई देते हैं।

स्वाती नक्षत्र के भूतेश (Bootes) मंडल से पूरब हटकर सुनीति-मंडल है। सुनीति ध्रुव की माता थी, जिसे भगवान विष्णु ने विमान में बैठाकर आकाश में ताराओं के बीच स्थान पाने का वर दिया। सुनीति के पूरब-उत्तर दशाननमंडल है तथा शिरोविन्दु से ठीक पूरब दिशा में क्षितिज के समीप सर्पमाल-मंडल है। दशाननमंडल अन्य काल में राक्षसराज रावण-दशानन का रूप माना गया तथा मंडल के प्राचीन ग्रीक नाम दसनस (Dosanus) का कारण हुआ। राक्षस होने पर भी शिव के पूजक रावण को, राम के हाथों वध होने के कारण, पवित्र उत्तर आकाश में ही स्थान मिला। सुनीति दशानन तथा सर्पमाल के पाश्चात्य नाम Corona Borealis, Hercules तथा Ophiucus हैं।

मिथुन राशि का यूरोपीय नाम जेमिनी (जुड़वां बच्चे) है। मंडल के दोनों उज्ज्वल तारे पाश्चात्य कथाओं में 'लीडा' के जुड़वाँ पुत्र 'केस्टर' तथा 'पौलुक्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मंडल के अरबी नाम 'अलतौ अमान' का भी अर्थ जुड़वाँ बच्चे ही होता है। दक्षिण प्रशांत महासागर के द्वीपों के निवासी तक उन्हें दो जुड़वा भाई 'पिपरी-रेहुआ' के नाम से जानते हैं जो तारा कुछ कम प्रकाशवाला है, वह 'कैस्टर' तथा अधिक प्रकाशवाला 'पौलकस' है। ग्रीक अक्षरों से नक्षत्रों के नाम देने की पद्धति में अधिक प्रकाशमान् तारा α होता है। पर इस 'मंडल' में कैस्टर ही α है तथा 'पौलुक्स' β। कैस्टर का नाम कतिपय भारतीय ग्रंथों में विष्णु तारा दिया गया है।

मृगव्याध-मंडल का सर्वोज्ज्वल तारा लुब्धक पाश्चात्य देशों में 'सिरिअस' के नाम से प्रसिद्ध है। आधुनिक प्रणाली के अनुसार यह α कैनिस मेजरिस अथवा α-मृग व्याध हुआ।

कर्क पाश्चात्य कैन्सर (Cancer) है तथा हृत्सर्प मंडल अनगिनित सिरोंवाला पाश्चात्य सर्प हाइड्रा (Hydra) है। यह जलवासी सर्प यम अर्थात् काल की पुत्री 'आकाश' में रहता है। पुनर्वसु से निकल कर 'वासुदेव' सूर्य इस हृत्सर्प का दमन करते हैं। वैदिक काल में वर्षारंभ के समय सूर्य इसी तारा-मंडल में रहते थे, अतः इस तारा-मंडल से जल-निरोधक महासर्प वृत्र की कथा निकली, जिसका दमन कर के परमैश्वर्यशाली इन्द्र अर्थात् सूर्य पृथ्वी पर जल बरसाते हैं। जल-निरोधक सर्प का निवास स्वभावतः जल में ही माना गया है। संसार की लगभग सभी भाषाओं में कर्क राशि के नाम का अर्थ केंकड़ा ही है; पर भारतीय पुष्य नक्षत्र एक आकाशिक पुष्प का रूप माना जाता था।

सिंह राशि को प्राचीन यूरप में भी (Leuin) सिंह ही कहते थे तथा अरब, फारिस, तुर्किस्तान, सिरिआ प्राचीन जेरूसलेम तथा बैबीलोन में क्रमशः आसाद, शेर, अर्तान, अर्यो, अर्ये तथा आरू कहते थे, जिन सबका अर्थ सिंह ही होता है।

'मघा' नक्षत्र को प्राचीन रोम में 'कौर लिओनिस' (Cor Leonis) अर्थात् सिंह का हृदय कहते थे। अरबों ने भी इसको इसी आशय का नाम दिया 'अलकल्बुल असाद'। मघा, ज्येष्ठा, दक्षिण मीन तथा रोहिणी इन चारों प्रकाशमान् ताराओं के संचार में छः घंटे का अंतर है। उन्हें इस कारण चार राजकीय नक्षत्र अथवा चार दिक्पाल कहा गया है।

सिंह राशि में मघा से कम प्रकाश का नक्षत्र उत्तर फाल्गुनी है, जो सिंह के पुच्छ का स्थान होने के कारण अरब में 'अलधनब अल असाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस नक्षत्र का आधुनिक पाश्चात्य नाम डेनिबोला (Denebola) इसी अरबी नाम का रूपान्तर है। पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र के दो तारात्रों के साथ यह एक त्रिभुज का आकार बनाता है।

पाँच तारों का हस्त नक्षत्र भारत में मनुष्य के हाथ का रूप माना गया। जब सितंबर-अक्टूबर में सूर्य इस नक्षत्र में रहते हैं, तब उस समय की वर्षा को हस्त नक्षत्र अथवा हथिया की वर्षा कहते हैं। इस वर्षा का विशेष महत्त्व यह है कि इस समय धान का फूल निकलनेवाला होता है तथा रब्बी की बावग के लिए जमीन तैयार की जाती है। इस समय वर्षा न होने से धान तथा रब्बी दोनों फसलें नष्ट हो जाती हैं।

ग्रीक पौराणिक कथाओं में इस मंडल में कौए का रूप माना गया। अरब में इसे 'अलअजमाल' (ऊँट) तथा 'अलहीबा' (तम्बू) कहा गया। पारसी धर्मग्रंथ जेन्द आवेस्ता में एक आकाशिक कौए का वर्णन है तथा संभवतः इस मंडल का पाश्चात्य नाम इसी कथा से आरम्भ हुआ हो।

कन्या-मंडल को लगभग सभी देशों में कुमारी कन्या का ही रूप दिया गया है। मंडल का प्रकाशमान् नक्षत्र चित्रा पाश्चात्य स्पीका (Spica) है, जिसका अर्थ 'गेहूँ के पौधे की फली' है। वसंत ऋतु की पूर्णिमा (चैत्र पूर्णिमा) आज से कोई दो सहस्र वर्ष पहले तभी होती थी, जब चन्द्रमा लगभग चित्रानक्षत्र के समीप होता था। इसीसे उस महीने का नाम चैत्र हुआ। गेहूँ की फसल भी इसी समय काटी जाती है।

इस मंडल को दो नक्षत्र ε और δ (ε तथा δ (Virginis) लगभग एक दूसरे के उत्तर-दक्षिण है। इन्हें प्राचीन भारत में क्रमशः आपस् तथा अपांवत्स कहा जाता था। (आपस् = जल अपांवत्स = जलपुत्र) 'सूर्य-सिद्धान्त' में इनका स्थान चित्रा के ११° तथा ५° उत्तर कहा गया है।

ईश (अथवा भूतेश) मंडल के पाश्चात्य तथा अरबी नामों के अर्थ सारथी ऋक्ष-वाहक (Beardriver) अथवा बर्छा लिये योद्धा हैं। इस मंडल का आधुनिक नाम (Bootes) बूट्स है। इसका प्रकाशमान् किंचित् पीतवर्ण तारा स्वाती (पाश्चात्य आर्कत्यूरस-Arkturus) आदिकाल से ही मनुष्य मात्र के लिए आकर्षक तथा रोचक रहा है। यूनानी वैद्य हिपोक्रेट्स का विश्वास था कि इस नक्षत्र का मनुष्य के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव होता है। आज से लगभग १३००० वर्ष पूर्व वसंत-संपात आधुनिक कन्या राशि में था। उस समय भूतेश-मंडल तथा स्वाती तारा का वसंत सांपातिक बिंदु से वही संबंध था जो वैदिक काल में ब्रह्मा-मंडल तथा ब्रह्म हृदय तारा का तत्कालीन साम्पातिक कृतिका नक्षत्र से हुआ (देखिए अध्याय ७)। दक्षिण एशिया की प्राचीन सभ्यताओं में शिव (ईश) का वही स्थान था, जो वैदिक आर्यों में ब्रह्मा का।
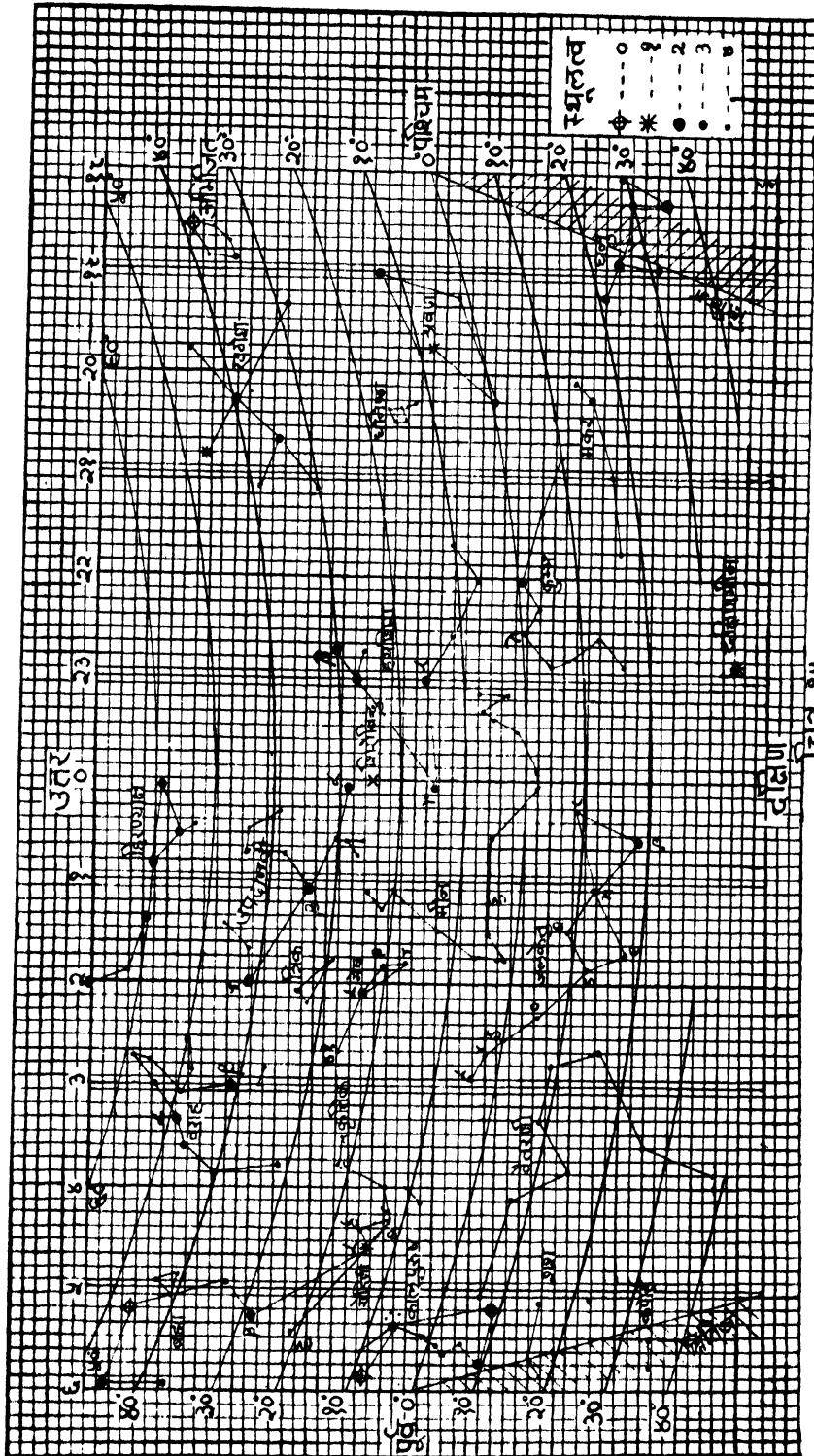
सुनीति-मंडल पाश्चात्य कोरोना बोरिआलिस (Corona Borealis) उत्तर किरीट है। इसे रेडइंडियन लोग भूतेश की स्त्री मानते हैं। संभवतः यह मंडल शिव की स्त्री भवानी का प्रतीक रहा हो तथा किरीट के रूप में भी यह विष्णु का किरीट रहा हो।

तुला राशि पाश्चात्य कथाओं में भगवान का तराजू है। चीन तथा अरब में भी इसे

तराजू ही कहते हैं। दशानन-मंडल पाश्चात्य देशों का पराक्रमी हरकुलेश (Hercules) है और प्राचीन ग्रीस में भी इसका नाम दशनस (Dosanus) ही था। दशानन रावण तथा हरकुलेश के पराक्रम की कथाओं में समानता स्पष्ट ही है। प्राचीन अरब में दशानन तथा सर्पमाल (Ophiucus) मंडल को मिला कर 'रौया' चारागाह कहते थे। वैसे सर्प-माल-मंडल को अरब में संपेरा (अलहव्वा) भी कहा जाता था। हरकुलेश-मंडल के दक्षिण-पश्चिम के कतिपय सूक्ष्म तारात्रों को सर्प (Serpens) मंडल अथवा हरकुलेश की गदा कहा गया। आकाशीय सर्पों तथा किरीट, गदा प्रभृति, ब्रह्मा मंडल के पद्मरूप आकार, राशिचक्र, प्रभृति से अनेक प्राचीन धार्मिक कथाओं में की उत्पत्ति हुई। अनार्यों के परमदेव शिव सर्पों की माला पहनते थे, विष्णु किरीटधारी थे तथा शंख, चक्र, गदा और पद्म उनके हाथों में थे। भगवान् के विराट् रूप का भी वर्णन दिव्य सर्पों के विना पूरा न हो सकता था।

चित्र में विच्छू (वृश्चिक)—पाश्चात्य स्कौर्पिओ (Scorpio) का उदय हो गया है तथा ओरायन (कालपुरुष) का अस्त। इससे ही यह पाश्चात्य कथा निकली, जिसमें बिच्छू के डंक से शिकारी ओरायन की मृत्यु हो गई थी। महाभारत में किरातरूप शिव (ईश) तथा फल्गुन (अर्जुन) में एक युद्ध का वर्णन है।

क्षितिज के उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व भाग चित्र में नहीं दिखाये गये हैं। लगभग २५° उत्तर अक्षांश के स्थान से देखने पर इस समय क्षितिज के उत्तर-पश्चिम में ब्रह्म-हृदय तथा उत्तर-पूर्व में अभिजित्—ये दोनों प्रकाशमान नक्षत्र दीख पड़ेंगे। इनका परिचय आगे के अध्याय में दिया है।

चित्र १५

२१ दिसंबर ६ बजे संध्या, २१ नवंबर ८ बजे रात्रि, २१ अक्तूबर १० बजे रात्रि, २१ सितंबर १२ बजे रात्रि, २१ अगस्त २ बजे रात्रि अथवा २१ जुलाई ४ बजे प्रातः को आकाश का मध्यभाग।

सातवाँ अध्याय

शरत और हेमंत की रात्रि तथा वसंत की संध्या में आकाश का मध्यभाग, वीणा, धनु श्रवण, खगेश धनिष्ठा, मकर, कुम्भ, हयशिरा, उपदानवी, मीन, मेष, त्रिक, जलकेतु, वृष, कृत्तिका, ब्रह्मा, कालपुरुष, वैतरणी।

चित्र-संख्या ५५ में २१ नवम्बर की आठ बजे रात्रि अथवा २१ दिसंबर की ६ बजे संध्या के लिए आकाश के मध्यभाग का चित्र दिया हुआ है। पश्चिम दिशा से आरंभ करके क्षितिज के पश्चिम-उत्तर भाग में अभिजित् तारा का वीणामंडल तथा पश्चिम-दक्षिण भाग में धनु-मंडल है। इन दोनों का संचार समान है। पर उत्तर में होने का कारण अभिजित् का उन्नतांश लगभग २०° होगा; पर धनु का थोड़ा भाग क्षितिज के नीचे चला गया होगा। दोनों मंडलों के मध्य विन्दुओं को मिलाकर जो परम वृत्त खींचा जाय, वह खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप होकर ही जायगा। २१ नवम्बर के स्थान पर यदि २८ अगस्त को आठ बजे रात्रि में आकाश का निरीक्षण किया जाय, तो वीणा तथा धनु-मंडल क्रमशः शिरोविन्दु के सीधे उत्तर तथा दक्षिण होंगे।

अभिजित् तारा के मंडल को पाश्चात्य देशों में ओरफीअस की वीणा (Lyre) का रूप माना गया। अरबों ने इस मंडल को 'संज रूमी' अर्थात् ग्रीक वीणा का नाम दिया। भारत में यह मंडल सरस्वती की वीणा का प्रतिरूप हुआ। मंडल के उज्ज्वल तारा अभिजित् का पाश्चात्य नाम वेगा (Vega) तथा आधुनिक प्रणाली से α (Lyrae) लीरे है। यह भारतीय नक्षत्र क्रम का बीसवाँ नक्षत्र है। समय-समय पर कभी तो इसकी गणना चन्द्रमा के नक्षत्र में हुई है और कभी नहीं भी हुई है। इसीसे भिन्न-भिन्न पद्धतियों में २७ अथवा २८ नक्षत्र माने गये हैं। भारतीय ज्योतिषियों ने इस मंडल को सिंघाड़े (शृंगट) के आकार का माना है। मध्यपूर्व में इस मंडल को ही गरुड़ पक्षी भी माना गया है। लगभग १२००० ई० पू० में जब खगोल का उत्तर ध्रुव अभिजित् के समीप था, तब प्राचीन मिस्र में दैवी पक्षी मान कर इसकी पूजा होती थी। 'देन्देरह' के अनेक मंदिर इसी नक्षत्र को लक्ष्य करके बने थे।

धनु-मंडल के स्पष्ट दो खंड हैं। पश्चिम से आरम्भ करके उन्हें पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र कहते हैं। ये दोनों ही चन्द्रमा के २७ या २८ नक्षत्रों में सम्मिलित हैं।

सीधे पश्चिम दिशा में क्षितिज से कोई ३०° ऊपर श्रवण नक्षत्र है। बेबिलोनिया तथा पश्चिम के देशों में यह बाज़ पक्षी के रूप में प्रसिद्ध था। इसका यूरोपीय नाम एक्वीला (Aquila) तथा अरब नाम 'अल ओकाब' थे, जिन दोनों का ही अर्थ बाज़ पक्षी है। रोमन साम्राज्य के झंडे का बाज़ पक्षी इसी मंडल की महत्ता के कारण अपनाया गया।

इस मंडल के प्रकाशमान् पीतवर्ण तारा α एक्वीले का नाम आलटेयर (Altair) सम्पूर्ण मंडल के अरबी नाम का रूपान्तर है। मंडल के भारतीय नाम का अर्थ 'कान' है। इसे पुराणों में अश्वत्थ भी कहा है। मंडल के तीन प्रकाशमान् तारे वामन अवतार विष्णु के तीन पग माने गये हैं। सूर्यसिद्धान्त में इस मंडल का नाम वैष्णव है। आलटेयर पृथ्वी के निकटवर्त्ती नक्षत्रों में है। इसकी दूरी लगभग सोलह प्रकाश वर्ष है। श्रवण चान्द्र-नक्षत्रों में एक है तथा इसकी गणना उत्तराषाढ़ा के पश्चात् होती है।

श्रवण से कुछ ही ऊपर हटकर सूक्ष्म, किन्तु सघन ताराओं का धनिष्ठा-मंडल है। इसे श्रविष्ठा भी कहते हैं। यह पाश्चात्य देशों में 'डालफिन' मछली का प्रतिरूप माना गया है। चीन में इसे 'क्वाचाउ' (Kwachau कमंडल) कहते थे।

शिरोविन्दु से दक्षिण-पश्चिम दिशा में क्षितिज से कोई २०° ऊपर उठकर मकर राशि के तारे हैं। मकर-मंडल को कहीं-कहीं मृग भी कहा गया है। इसके पाश्चात्य नाम का तात्पर्य बकरे की सींग है। चीन में इसे बैल का रूप माना गया था।

श्रवण-धनिष्ठा से उत्तर को उनकी अपेक्षा क्षितिज से और भी ऊपर उठा हुआ खगेश (पाश्चात्य सिगनस) मंडल है। उत्तर दिशा का यह मंडल भारत में विष्णु का वाहन गरुड़ पक्षी था तथा पाश्चात्य कथाओं में यह राजहंस रूपधारी ज्यूपिटर बन गया। कालांतर से भारत में भी यह हंस के रूप में वीणाधारिणी सरस्वती का वाहन बना।

शिरो-विन्दु से लगा हुआ चमकीला तारा α ऐन्ड्रोमीडा से सीधे पश्चिम β पेगासी है तथा γ पेगासी के सीधे पश्चिम α पेगासी है। यह चारों तारे अर्थात् α एन्ड्रोमीडा, (उपदानवी) γ पेगासी α पेगासी β पेगासी (हयशिरा) भारतीय भाद्रपद नक्षत्र के चार तारे हैं। इनमें α तथा β हयशिरा मिलकर पूर्वाभाद्रपदा तथा γ हयशिरा एवं α उपदानवी मिलकर उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र बनाते हैं। हयशिरा मंडल ही कदाचित् प्रजापति के हय स्वरूप (बृहदारण्यकोपनिषद १।७) की कथा का कारण हुआ तथा इसके चार पाँव अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के प्रोष्ठपाद (पवित्र पैर) हैं।

हयशिरा-मंडल वैश्वानर की चार पुत्रियों में से एक का प्रतिरूप है। इसका विवाह क्रतु से हुआ था। इसकी बहन उपदानवी का व्याह हिरण्याक्ष से हुआ। 'पुलोमा' तथा 'कालका' से कश्यप ऋषि ने ब्याह किया। हयशिरा से पाश्चात्य 'नेपच्यून' तथा 'मेडूसा' के पुत्र, पंख लगे घोड़े, की कथा का प्रचार हुआ।

α हयशिरा के अरबी नाम 'मारकाव' का अर्थ घोड़े की जीन है।

उपदानवी मंडल के तीन चमकीले तारे पश्चिम से पूरब को आधुनिक प्रणाली में क्रमशः α, β तथा γ नाम से पहचाने जाते हैं। α उपदानवी उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र के दो ताराओं में एक है। अरबों ने इसे 'अल सुरेत अलफरस' अर्थात् घोड़े की नाभी कहा था। उस समय यह तारा हयशिरा मंडल का ही अंश माना जाता था। पीछे चलकर अरब में

भ इसका नाम 'अलरास अलमराह अल मुसल सलह' हो गया जिसका अर्थ है 'जंजीरों में जकड़ी स्त्री का सर'। पाश्चात्य पौराणिक कथाओं में यह सिफिअस (कपि) तथा कैसिओपिआ (Cassiopeia हिरण्याक्ष) की पुत्री एण्ड्रोमीडा थी। इसकी माँ कैसिओपिआ का गर्व था कि एण्ड्रोमीडा समुद्री अप्सराओं से भी सुन्दर थी। इस कारण ही समुद्री अप्सराओं ने एण्ड्रोमीडा को लोहे की कड़ियों में जकड़कर जल-जन्तु 'सीटस' (जलकेतु) के मुँह में डाल दिया जहाँ से वीर परसि-अस (परशु = वराह) इसे छुड़ा लाया।

उपदानवी के समीप त्रिकमंडल है जिसका उत्तरवर्त्ती तारा उपदानवी तथा मेषराशि के बीचो-बीच है। मेषराशि का मंडल शिरोविन्दु से लगभग सीधे पूरब को पहचाना जा सकता है। उपदानवी के दक्षिणवर्त्ती मीन तथा जलकेतु-मंडल एवं हयशिरा-मंडल में कोई विशेष उज्ज्वल तारा नहीं है। कुम्भराशि को संसार के लगभग सभी देशों में कुम्भ अथवा जलवाहक का ही नाम मिला। मंडल का सबसे प्रकाशमान् तारा α एक्वारी का पाश्चात्य नाम 'सदाल मलिक' (Sadal malik) अरबी नाम 'अलसांद अलमलिक' (राज्य का भाग्यशाली तारा) का रूपान्तर है। मंडल का एक सूक्ष्म तारा γ कुम्भ अपने चारों ओर के एक सौ तारों के साथ भारतीय चान्द्र नक्षत्र शतभिज् हुआ।

मीनराशि का कदाचित् विष्णु भगवान के मीन अवतार से संबंध है। इस मंडल का तारा ς मीन (ς Piscium) अपने पास के ३१ अन्य तारों के साथ भारतीय चान्द्र नक्षत्र रेवती का स्थान है जो भारतीय ज्योतिर्गणना का प्रारंभिक विन्दु है। लगभग १५०० वर्ष पूर्व वसंत-संपात यहीं पर था। सूर्य-सिद्धान्त में ग्रहों का स्थान निरूपण यह मानकर किया गया है कि सृष्टि के आरंभ में ग्रहों की गति इसी विन्दु से प्रारंभ हुई।

मीन राशि से दक्षिण जलकेतु-मंडल है। इसके पाश्चात्य नाम 'सीटस' का अर्थ जलजंतु ह्वेल है। अरबों ने इसे 'अलकेतुस' कहा। इस मंडल के पूरब-उत्तर छोर का चमकीला तारा α अरबी तथा पाश्चात्य ज्योतिष में मेनकार अथवा अलमिनहार के नाम से प्रसिद्ध है जिससे जलजन्तु की नाक का बोध होता है। प्रकाश में इससे कम β जलकेतु-मंडल के दक्षिण-पश्चिम छोर पर है, जिसका पाश्चात्य नाम 'देनेबकेटौस' (Deneb Kaitos) अरबी नाम 'अलधनब अलकेतौस अलजनूबी' का रूपान्तर है, जिसका अर्थ है दक्षिण स्थित जलजंतु की पूँछ। मंडल का सबसे विचित्र तारा o सेटी (o Ceti) है जिसे मीरा (Mira) कहते हैं। इस नक्षत्र का प्रकाश भी अलगुल की भाँति घटता-बढ़ता रहता है। पर इस परिवर्त्तन में जहाँ अलगुल को ढाई दिन लगते हैं, वहाँ इस नक्षत्र को ३३१ दिन लग जाते हैं। इसका स्थूलत्व इस काल में २ से ६ तक रहता है। पर कभी-कभी इसका प्रकाश इतना कम हो जाता है कि बिना दूरवीक्षण यंत्र के यह दिखाई ही नहीं देता तथा कभी यह २ से भी कम स्थूलत्व का हो जाता है।

मेष राशि के पश्चिम भाग के दो तारे β तथा γ मिलकर भारतीय चान्द्र नक्षत्र अश्विनी बनाते हैं। α मेष (α Arietis) के पाश्चात्य नाम 'हमाल' का अर्थ अरबी में भेड़े का सर होता है। α से पूरब लगभग आठ अंश की दूरी पर ४१ मेष (41 Arietis) तारा है जो भारतीय चान्द्रनक्षत्र भरणी का स्थान है।
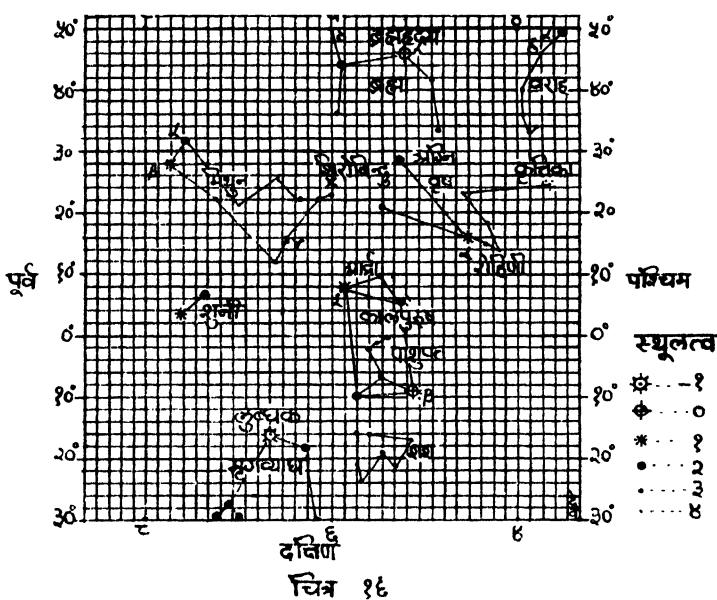
मेष राशि से पूरब में वृष राशि है। इस मंडल के तीन स्पष्ट खंड हैं। (१) अत्यन्त सूक्ष्म ६ ताराओं का सघन पुंज कृत्तिका (२) रोहिणी तथा उसके समीपवर्त्ती ताराओं का कोणाकार (३) पूर्व भाग स्थित अग्नि (β टौरी Tauri) तथा ऽ वृष (Tauri) तारा। वृष-मंडल का पाश्चात्य नाम टौरस (Taurus वृषभ) भी इसी अर्थ का है। अरब में इसे अलतौर (साँढ़) कहा गया, ईरान में गाव तथा गाउ। यहाँ तक कि दक्षिण अमेरिका के आदिम निवासियों ने भी इस मंडल में बृषभ का ही आकार देखा। वृषराशि का अंशमात्र होते हुए भी कृत्तिका को वृषमंडल से अधिक ख्याति प्राप्त हुई। यह सूक्ष्म ताराओं का सघन समूह आकाश के हृदयग्राही दृश्यों में है। ईसवी-सन् के २३५७ वर्ष पूर्व के चीनी ग्रंथों में इस नक्षत्र-पुंज का वर्णन है। ईसवी सन् के कोई दो हजार वर्ष पूर्व वसंत-संपात कृत्तिका नक्षत्र पर ही होता था। तभी कृत्तिकाओं के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय स्वर्गीय सेना के सेनापति माने गये थे; क्योंकि नक्षत्रों की गणना यहीं से आरम्भ होती थी। जिस महीने में पूर्णिमा के समय चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र के समीप रहा, वह महीना कार्त्तिक महीना कहलाया। इसी महीने में अमावस्या को सूर्यास्त के पश्चात् ही पूरब में कृत्तिका का उदय होता है तथा लगभग समस्तरात्रि यह नक्षत्र दिखाई देता है। ऐसे समय से दीप जलाकर कृत्तिका का उत्सव मनाने की प्रथा चली। कृत्तिकाओं को प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अग्निज्वाला अथवा दीपपुंज का प्रतिरूप माना गया है। चान्द्र नक्षत्रों का एकत्रित प्राचीनतम वर्णन तैत्तिरीय संहिता में है, जिस ग्रंथ में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से ही आरंभ होती है। पुराण काल में कृत्तिकाएँ शिव तथा अग्नि के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय की छ धाइयाँ हो गईं। स्वामी कार्त्तिकेय शिव तथा अग्नि के तेज को लेकर गंगा नदी में उत्पन्न हुए थे। इनका तेज इतना प्रखर था कि कोई मनुष्य या देवता इनके समीप जाने से असमर्थ थे। देवताओं की सेना का आधिपत्य करने के लिए स्वामी कार्त्तिक को पाल-पोसकर बड़ा करना आवश्यक था। इसीलिए ब्रह्मा ने इनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए कृत्तिकाओं की सृष्टि की। कृत्तिकाओं के वैदिक नाम हैं·······अंबा, दुला, नितत्नी, अ्रयन्ती, मेघयंती, वर्षयंती चुपुणीका (अंबायैस्वाहा दुलायैस्वाहा नितत्न्यैस्वाहा अ्रयंत्यैस्वाहा मेघयंत्यैस्वाहा वर्षयंत्यैस्वाहा चुपुणीकायैस्वाहा—(तै० ब्राह्मण ३/१/४)। पौराणिक काल में इन्हें क्रमशः संभूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, अरुन्धती तथा लज्जा कहा गया। विना किसी यंत्र के कोई तो ६ ताराओं को ही देख सकता है और कोई सात को। पाश्चात्य पौराणिक कथाओं में कृत्तिकाएँ (प्लीएड्स) ऐटलस तथा प्लीओन की सात सुन्दरी पुत्रियाँ थीं, जिनके रूप पर मुग्ध होकर महा व्याध ओरायन (कालपुरुष) इनका पीछा करने लगा। व्याध को पीछा करते देख लड़कियाँ भयभीत हो विलाप करने लगीं। इनके विलाप को सुनकर देवताओं के राजा द्युपितर (Jupitor) ने इन्हें कबूतर बना दिया।

इस मंडल को अरबी में अल थूरया (अनेक ताराओंवाला) अथवा अलनज्म (उत्तम) कहा गया है। हज़रतमुहम्मद ने कुरान शरीफ़ की ५३ वीं तथा ८६ वीं सूरा में इस मंडल का नाम लिया है।

कृत्तिकाओं में सबसे प्रकाशमान तारा एलसिओन भारतीय अंबा अथवा अरुन्धती है।

रक्तवर्ण रोहिणी नक्षत्र को सहज ही पहचाना जा सकता है। अपने समीप के छः अन्य ताराओं के साथ यह पाश्चात्य हायेड्स मंडल बनाता है। हायेडस ऐटलस तथा ईथरा की सात पुत्रियाँ थीं। अतएव सातों प्लीएड्स की सौतेली बहनें थीं। यह चौदह पुत्रियों के नाम से प्रसिद्ध हुई। ऐतरेय ब्राह्मण में रोहिणी प्रजापति (कालपुरुष : ओरायन Orion) की पुत्री थी, जिसके साथ सम्बन्ध के लिए प्रजापति ने अनुचित इच्छा की थी। उनको इस कुकृत्य से रोकने के लिए दैवी मृगव्याध ने उनपर पाशुपत बाण चलाया। चित्र १५ में मृगव्याध-मंडल का अभी उदय नहीं हुआ है। मृगव्याध, कालपुरुष, वृष तथा ब्रह्मा-मंडल का क्रम चित्र संख्या १६ में दिखाया गया है। इस चित्र में २१ फरवरी आठ बजे रात्रि के लिए शिरोविन्दु के समीपवर्त्ती मंडल ही दिखाये गये हैं। रोहिणी, कालपुरुष तथा मृगव्याध का

चित्र १६

क्रम स्पष्ट है। कालपुरुष के हृदय के तीन तारे पाशुपात बाण हैं। वृष-मंडल का अग्नि तारा (पाश्चात्य अलनाथ) ब्रह्मामंडल के ताराओं के साथ मिलकर आकाश में पंचभुज का आकार बनाता है। ऋग्वेद में ब्रह्मा को....करने वाला, अर्थात् कूर्म कहा गया है। ब्रह्मामण्डल का आकार कूर्म अर्थात् कछुए जैसा है। 'सूर्य-सिद्धान्त' में ब्रह्मामंडल के दो ताराओं, ब्रह्म-हृदय (α) तथा प्रजापति (δ) का ध्रुवक तथा विक्षेप दिया हुआ है। पुनः पंचभुज ब्रह्मामंडल कमल रूप होकर विष्णु की चतुर्भुज मूर्त्ति के हाथ का कमल, लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि का आधार कमल पुष्प तथा भारत का सांस्कृतिक चिह्न तक बन गया।

रोहिणी का पाश्चात्य नाम अलदबारन अरबी नाम 'अव्वल अल दबारन' का रूपान्तर है, जिसका अर्थ है कृत्तिकाओं के अनुगामी दबारन (प्लीएड्स) का प्रथम तारा। अग्नि तारा के अरबी नाम 'अलनाथ' का अर्थ है—निकाला हुआ।

आठवाँ अध्याय

आकाश-परिचय

आकाश का दक्षिण भाग—अगस्त्य अर्णवयान, त्रिशंकु बड़वा, क्रौंच, काकभुशुण्डि।

चित्र-संख्या १७ में २१ फरवरी तथा २१ अगस्त को आठ बजे रात्रि के समय आकाश के दक्षिण भाग का चित्र दिखाया गया है। चित्र को सीधा रखने से २१ फरवरी तथा उलटा रखने से २१ अगस्त के दृश्य दिखाई देते हैं।

यह स्पष्ट है कि खगोल का दक्षिण ध्रुव तथा उसके समीप के तारे कभी क्षितिज से ऊपर आ ही नहीं सकते। जैसा पहले बताया जा चुका है, जो भी चित्र २१ फरवरी की आठ बजे रात्रि के लिए सत्य है, वह २१ जनवरी की दस बजे रात्रि, २१ दिसंबर की बारह बजे रात्रि इत्यादि के लिए भी सत्य होगा। इसी भाँति २१ अगस्त की आठ बजे रात्रि का चित्र २१ जुलाई की दस बजे रात्रि इत्यादि के लिए होगा। चित्रों में क्षितिज का स्थान २५° उत्तर अक्षांश के लिए है। यदि दर्शक इससे उत्तर जाय तो क्षितिज और भी ऊपर उठ जायगा। दक्षिण जाने से क्षितिज भी नीचे जायगा तथा खगोल के दक्षिण ध्रुव के समीप के तारे भी दिखाई देंगे। खगोल का दक्षिण ध्रुव क्षितिज से उतना ही नीचे होगा, जितना कि दर्शक का उत्तरी अक्षांश। पृथ्वी के दक्षिण गोलार्द्ध में खगोल का दक्षिण ध्रुव क्षितिज से ऊपर उठ जायगा।

२१ फरवरी के चित्र में पूर्वोल्लिखित मृगव्याध-मंडल के नीचे अर्णवयान-मंडल है। (पाश्चत्य आर्गोनाविस—Argonavis) जिसमें प्रसिद्ध अगस्त्य तारा (पाश्चात्य कैनोपस Canopus) है। ऋग्वेद संहिता (१०।६३।१०) में आकाशीय दैवीनौका का वर्णन है। प्रलयकाल में सूर्य इसी अर्घ (जहाज) में बैठे थे तथा ऋषि अगस्त्य उनके नाविक थे। कदाचित् मंडल के पाश्चात्य नाम की उत्पत्ति इसीके आधार पर हुई। यह मंडल लगभग ७५° तक फैला हुआ है। इसके तीन खंडों के अलग-अलग पाश्चात्य नाम हैं—कारिना, (नाव का पिछला भाग—Carina), पपिस अगला भाग-पपिस (Pupis) तथा नाव का पाल-वेला (Vela)। अगस्त्य तारा कारिना में है। यह नौका ग्रीस में जेसन (Jason) की प्रसिद्ध नौका बनी तथा अरब में नूह (Noah) की नौका हुई।

α—कारिना—अगस्त्य तारा शरत् से वसंत तक ही दिखाई देता है। वर्षा ऋतु के अन्त का प्रतीक होने के कारण इस तारे के नामवाले ऋषि अगस्त्य की जल-शोषक

शक्ति की प्रसिद्धि हुई तथा दक्षिण दिशा में समुद्र की ओर होने से इनके विषय में समुद्र-शोषण की कथा चल निकली। विन्ध्य पर्वत के दक्षिण उदय लेने के कारण अगस्त्य के विंध्य को झुका देने की कथा चली। कहा जाता है कि विन्ध्य एक समय ऊँचा होते-होते आकाश का स्पर्श करने लगा, तब देवताओं के इच्छानुसार अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्य को झुककर उन्हें तपस्या हित दक्षिण जाने को, रास्ता देने के लिए कहा। तब से ही विन्ध्य झुका है ; क्योंकि अगस्त्य दक्षिण से लौटकर आये ही नहीं। प्राचीन मिस्र में यह तारा स्वर्गलोक 'काहिनूब' था, जिसे ग्रीकों ने 'कैनोपस' कहा। यही नाम मेनेलाओस की नौ सेना के प्रधान नाविक को भी दिया गया तथा उसके नाम पर सिकन्दरिया से १२ मील उत्तर-पूरब एक नगर भी बसाया गया।

इस नक्षत्र का अरबी नाम 'सुहैल' (ज्वलंत) है। चीन में अगस्त्य को बुद्धिमान साधु 'ला ओ जिन' कहा गया।

२१ अगस्त आठ बजे रात्रि के चित्र में दक्षिण आकाश में वृश्चिक तथा धनुमंडल की प्रधानता है, जो याम्योत्तर रेखा से लगे हुए पश्चिम तथा पूर्व को हैं। पाश्चात्य पौराणिक कथाओं में महाव्याध ओरायन (Orion) की मृत्यु इसी वृश्चिक के डंक से हुई थी और इसी कारण अब भी वृश्चिक के उदय होने के पूर्व ही ओरायन छिप जाता है। वृश्चिक को स्वयं 'धनु' के वाण का भय है।

चीन में वृश्चिक के रक्तवर्ण प्रकाशमान नक्षत्र ज्येष्ठा (Antares :—α Scorpio) को 'ताहू' अर्थात् महाग्नि कहते थे तथा वृश्चिक के टेढ़े पुच्छ को 'शिंगकुंग' (देवमंदिर)। अरबी में यह मंडल 'अल अ करब' अर्थात् विच्छू रहा।

वृश्चिक का सबसे प्रकाशमान नक्षत्र ज्येष्ठा, रंग तथा प्रकाश में मंगल ग्रह के समान है। इसीलिए पाश्चात्य देशों में यह 'एएटारिस' (Antares प्रतिद्वन्द्वी) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठा के पश्चिम तथा पूर्व क्रमशः अनुराधा तथा मूला चान्द्र नक्षत्र हैं।

धनुराशि के दो अंश स्पष्ट हैं। इनमें भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न आकृतियाँ देखी गईं। पाश्चात्य देशों में यह धनुष सहित धनुर्धर, अरब में दो शुतुरमुर्ग(अलनआम अल वारिद) तथा चीन में दो कड़छुल के सामान समझे गये। इस मंडल के पश्चिम तथा पूरब के अंश भारतीय पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा चान्द्र नक्षत्र हुए।
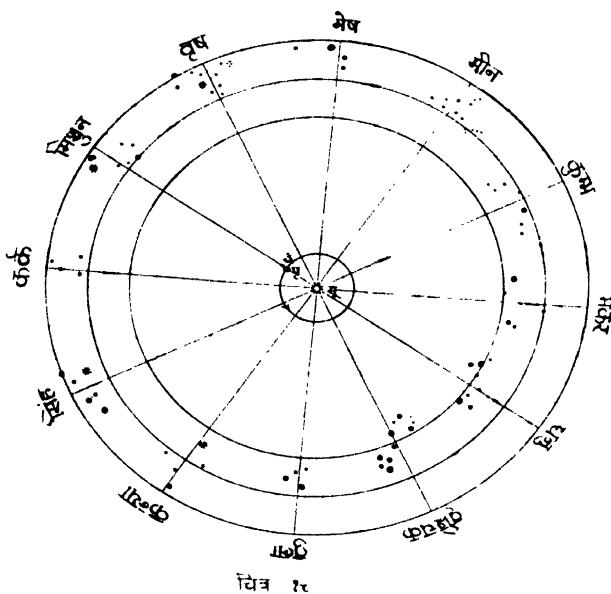
जैसे २१ फरवरी ८ बजे रात्रि को ६ घंटे की ध्रुवक रेखा तथा २१ अगस्त ८ बजे रात्रि को १८ घंटे की ध्रुवक रेखा याम्योत्तर वृत्त पर रहती है, वैसे ही २१ दिसंबर आठ बजे रात्रि को २ घंटे की ध्रुवक रेखा याम्योत्तर वृत्त पर होगी तथा वैतरणी मंडल का प्रकाशमान (१ स्थूलतत्त्व का) नक्षत्र α एरिडानी (α Eridani) क्षितिज के समीप सीधे दक्षिण दिशा में दिखाई देगा। २१ नवंबर की आठ बजे रात्रि को शून्य घंटे ध्रुवक की रेखा याम्योत्तर वृत्त पर होगी तथा याम्योत्तर वृत्त से पश्चिम दक्षिण-मीन पाश्चात्य (Fomalhaut) फोमाल हौट अथवा (PiscesAustralis) पिसिस औस्ट्रलिस तथा क्रौंच, एवं याम्योत्तर वृत्त से पूरब अमर काकभुशुण्डी (Phoenix) दृष्टिगोचर होंगे। दक्षिण मीन-मंडल में एक ही उज्ज्वल तारा है (स्थूलत्व १)। क्रौंच पक्षी(Grus) वाल्मीकि ऋषि की कथा का क्रौञ्च हो सकता है।

वड़वानल-मंडल के दोनों सर्वोज्ज्वल तारे α तथा सेण्टौरी Centauri β ६०° दक्षिण विक्षेप रेखा पर है। इसलिए ३०° उत्तर अक्षांश से तो दिखाई ही नहीं देते। यदि दर्शक का अक्षांश २७° अथवा २८° उत्तर हुआ तो भी उन्हें देखना सहज नहीं। कोई १५ जून की आठ बजे रात्रि को इन दो ताराओं का मध्यविन्दु याम्योत्तर वृत्त का उपरिगमन करता है। अतः वड़वानल के इन दो प्रकाशमान नक्षत्र α तथा β सेन्टौरी (Centauri) को देखने का सबसे अच्छा समय है १५ जून की आठ बजे रात्रि, ३० जून की ७ बजे रात्रि, ३१ मई की ९ बजे रात्रि, १५ मई की १० बजे रात्रि इत्यादि।
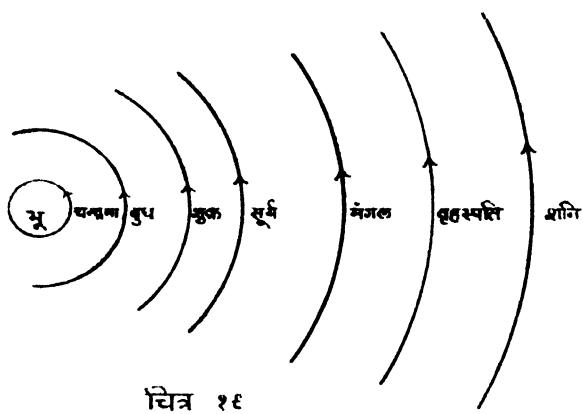
वड़वानल के पास ही उससे पश्चिम हटकर त्रिशंकु-मंडल है (पाश्चात्य क्रक्स Crux अथवा सदर्न क्रॉस—Southern Cross)। २७° उत्तर अक्षांश या इससे अधिक उत्तर के स्थान से इस मंडल का प्रमुखतम नक्षत्र α-Cruci (α-क्रुसी) नहीं दिखाई देता। लगभग २५° उत्तर अक्षांश से ३१ मई को ८ बजे रात्रि के समय वड़वानल तथा त्रिशंकु दोनों दिखाई देंगे। त्रिशंकु-मंडल विश्वामित्र का बसाया हुआ स्वर्ग है, जो उन्होंने अपने यजमान राजा त्रिशंकु के सशरीर निवास के लिए बनाया था। अलबिरूनी जब भारत आया था तब इस मंडल को 'शूल' कहते थे।

पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्द्ध में वड़वानल तथा त्रिशंकु से खगोल के दक्षिण ध्रुव का ज्ञान होता है। यदि α तथा β सेन्टौरी के मध्यविन्दु से इन दोनों नक्षत्रों की रेखा पर लंब खींची जाय तो वह खगोल के दक्षिण ध्रुव से होकर जायगी। इसी भाँति α तथा γ त्रिशंकु को मिलाती हुई रेखा भी खगोल के दक्षिण ध्रुव होकर जायगी। दोनों रेखाएँ जहाँ मिलें, वहीं खगोल का दक्षिण ध्रुव है।

त्रिशंकु-मंडल १५ मई की आठ बजे रात्रि को उपरिगमन करता है। २७° उत्तर अक्षांश या इससे और उत्तर जाने से मंडल के केवल β, γ तथा δ तारे दिखाई देंगे। ३०° उत्तर अक्षांश से अधिक उत्तर जाने से केवल γ दिखाई देगा। किसी भी स्थान से मंडल के निरीक्षण का उपयुक्त समय १५ मई की आठ बजे रात्रि, १५ अप्रैल की १० बजे रात्रि, इत्यादि ही है।

चित्र १८

पृष्ठ ४१-४२ देखिए

चित्र १९

पृष्ठ ५१ देखिए

नवाँ अध्याय

राशि, नक्षत्र-कूर्म तथा ग्रह

खगोल पर सूर्य का पूरे वर्ष का जो भ्रमण-मार्ग है, उसके बारह समान भागों को राशि कहते हैं। इन राशियों के नाम सर्वप्रथम उन भागों में स्थित नक्षत्र-मंडलों के नाम हुए। चन्द्रमा को खगोल की परिक्रमा में २७ दिन से अधिक, पर २८ दिन से कम, लगते हैं। पूर्णमासी से दूसरी पूर्णमासी तक का समय २६ दिनों से अधिक, पर ३० दिनों से कम, होता है। चन्द्रमा के भ्रमण के अनुसार आकाश के सत्ताईस अथवा अट्ठाईस खंड किये गये हैं, जिन्हें भारतीय ज्योतिष में **चान्द्र नक्षत्र** (अरबी—मनाज़िल) कहते हैं। राशियों की गणना सूर्य के क्रान्तिवृत्त पर होती है; पर नक्षत्रों की गणना उनके भभोग के अनुसार विषुव-वलय अथवा किसी भी अहोरात्र वृत्त पर होती है। एक राशि का भोग ३०° तथा एक नक्षत्र का भभोग ८००′ होता है। ऋग्वेदकाल में चान्द्र नक्षत्रों का ज्ञान था; पर राशियों का नहीं। सभी देशों में पहले चान्द्र नक्षत्रों का ही ज्ञान हुआ, फिर राशियों का। उस समय इनकी गणना कृत्तिका से आरंभ होती थी, जहाँ वसंत सांपातिक विन्दु था। वैदिक काल के नक्षत्र निम्न-लिखित हैं—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, तिष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवणा, श्रविष्ठा शतभिक्, पूर्वप्रोष्ठपद, उत्तर प्रोष्ठपद, रेवती, अश्वयुज, अपभरणी। इनमें तिष्य, श्रविष्ठा, प्रोष्ठपद, अश्वयुज तथा अपभरणी को पीछे चलकर क्रमशः पुष्य, धनिष्ठा, भाद्रपद, अश्विनी तथा भरणी कहने लगे।

चान्द्र नक्षत्रों के तारे कुछ तो राशिचक्र के ही अन्तर्गत हैं तथा कुछ (मृगशीर्ष, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, अभिजित्, श्रवणा, श्रविष्ठा, भाद्रपद) अन्य मंडलों के। फिर भी अपने-अपने कदंबाभिमुख भोग (Helio Centric Longitude) के अनुसार प्रत्येक नक्षत्र किसी-न-किसी राशि का अंश माना जाता है। 'वराहमिहिर' के अनुसार राशिचक्र का नक्षत्रों में विभाग निम्नलिखित प्रकार से है—

मेषराशि—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका।

वृषराशि—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा।

मिथुनराशि—मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु।

कर्कराशि—पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा।

सिंहराशि—मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी।

कन्याराशि—उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा।

तुलाराशि—चित्रा, स्वाती, विशाखा।

वृश्चिकराशि—विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा।

धनुराशि—मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा।
मकरराशि—उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा।
कुम्भराशि—धनिष्ठा, शतभिष्, पूर्वभाद्रपद।
मीनराशि—पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती।

खगोल पर सूर्य की गति स्पष्ट दीखती नहीं; पर चन्द्रमा की गति तो दीखती ही है। इसलिए सूर्य के खगोल पर भ्रमण करने का ज्ञान होने के पहले ही संसार के सभी प्राचीन देशों में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा के भ्रमण का ज्ञान हो गया था तथा इन नक्षत्रों के विभाग भी किये गये। एक पूर्णिमा (अथवा अमावस्या) से दूसरी पूर्णिमा (अथवा अमावस्या) तक का समय सहज ही एक मास माना गया। लोगों ने ऐसा देखा कि प्रतिमास पूर्णिमा के समय चन्द्रमा का स्थान भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में रहता है। जब इन महीनों के नाम पड़े तब १२ मासों में पूर्णिमा के समय चन्द्रमा क्रमशः चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, आषाढ़ा, श्रवण, भाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मार्गशीर्ष, पुष्य, मघा तथा फाल्गुनी नक्षत्रों में थे। इसीसे भारतीय मासों के नाम क्रमशः चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन हुए।

ज्योतिः-सिद्धान्त काल में मासों की परिभाषा बदल कर सूर्य के राशि-चक्र-भ्रमण के अनुसार बना दी गई। मास तो पहले की भाँति एक पूर्णिमा (अथवा अमावस्या) से दूसरी पूर्णिमा (अथवा अमावस्या) तक का समय रहा। संवत्सर का प्रथम मास चैत्र वह मास हुआ, जिसमें सूर्य मेष राशि में जाय। वैशाख वह मास हुआ, जिसमें सूर्य वृष राशि का संक्रमण करे। इसी भाँति ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष (अग्रहायण), पौष, माघ तथा फाल्गुन क्रमशः वे मास हैं जिनमें सूर्य मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन राशि का संक्रमण करे। सूर्य को राशिचक्र का पूरा भ्रमण करने में ३६५$\frac{१}{४}$ दिन लगते हैं। एक-एक राशि-वृत्त का बारहवाँ भाग अर्थात् ३०° है। अतः एक राशि के आरंभ से अंत तक का माध्यमिक काल ३०·४३७ दिन होता है। पर एक पूर्णमासी से दूसरी पूर्णमासी (अथवा एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक का समय) लगभग २६ दिन ६ घंटे से लेकर २६ दिन २० घंटे तक ही होता है। अतएव जब चन्द्रमा के अनुसार मासों की गणना होती है तब १२ मास मिलकर एक सौर (Solar) वर्ष से लगभग दस दिन कम होते हैं तथा तीन-तीन वर्ष पर किसी-न-किसी राशि के अन्तर्गत ही उसके आरम्भ तथा अंत में दो पूर्णमासी अथवा दो अमावस्याएँ हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में ही भारतीय पंचांग का अधिक मास होता है।

खगोल पर नक्षत्रों का पारस्परिक स्थान तो अचल है; पर खगोल के ध्रुव अचल नहीं। जैसा पहले बताया जा चुका है, खगोल का उत्तरध्रुव, सूर्य के क्रान्तिवृत्त के उत्तरध्रुव से प्रायः २३$\frac{१}{२}$° दूर रहकर उसकी परिक्रमा करता है और इसकी एक परिक्रमा में कोई २६००० वर्ष लगते हैं। इसका फल यह होता है कि सूर्य के क्रान्ति-वृत्त तथा खगोल की विषुवरेखा के संपात विन्दु अचल न होकर निरंतर चलायमान रहते हैं। जैसा पहले अध्याय में बताया जा चुका है, जब भी सूर्य विषुवरेखा पर आये, दिन और रात्रि का मान एक दूसरे के समान होगा।

विषुव का उल्लंघन करके जब सूर्य उत्तर खगोलार्द्ध में प्रवेश करे, तब उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़ा और रात्रि छोटी होगी ; क्योंकि सूर्य अपनी दैनिक परिक्रमा का आधे से अधिक अंश क्षितिज के ऊपर व्यतीत करेगा । इस अवस्था में उत्तरी गोलार्द्ध का ग्रीष्म तथा दक्षिण गोलार्द्ध का शिशिर हो गया । इसके विपरीत जब विषुव का उल्लंघन करके सूर्य दक्षिण खगोलार्द्ध में जायगा, तब उत्तरी गोलार्द्ध में दिन छोटे तथा रात्रि बड़ी होगी; क्योंकि सूर्य अपनी दैनिक परिक्रमा का आधे से अधिक अंश क्षितिज के नीचे व्यतीत करेगा । दोनों संपातों में से जिसके उपरान्त उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़ा और रात्रि छोटी होने लगे, उसे वसंतसंपात तथा इससे विपरीत अवस्थावाले संपात को शरत्संपात कहते हैं ।

वैदिक काल में भारत में वर्ष की गणना वसंतसंपात से होती थी तथा एक वसंत-संपात से दूसरे वसंत-संपात का समय 'वर्ष' माना जाता था । परन्तु ज्योतिः-सिद्धान्त काल में इसकी गणना नक्षत्रों के बीच सूर्य के भ्रमण के आधार पर हुई तथा एक मेष राशि के प्रवेश अथवा अतिक्रमण से दूसरे प्रवेश अथवा अतिक्रमण का समय 'वर्ष' माना गया । इसे नाक्षत्र सौर वर्ष कहते हैं । भारतीय काल-विभाग में दिवस एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय का माध्यमिक मान था, तथा इस समय को ६० घटिका, प्रत्येक घटिका को ६० पल तथा प्रत्येक पल को ६० विपल में विभक्त किया गया था । इसी भाँति नक्षत्रों के बीच सूर्य की एक सम्पूर्ण परिक्रमा का वृत्त (वर्त्तुल परिधि) १२ राशियों में, प्रत्येक राशि ३०° में, प्रत्येक अंश ६० कला में तथा प्रत्येक कला ६० विकला में विभक्त थी । सम्पूर्ण वृत्त ३६० अंश का माना गया । वृत्त अथवा कोण की माप की यह प्रणाली तो बिना किसी परिवर्त्तन के डिगरी (Degree) मिनट (Minute) तथा सेकेंड (Second) के रूप में आधुनिक पाश्चात्य गणित तथा ज्योतिष में चली आई है ; पर घटिका, पल, विपल इत्यादि के स्थान पर दिवस के चौबीसवें अंश घंटा (= २½ घटिका) मिनट (= २½ पल) सेकेंड (= २½ विपल) का व्यवहार प्रचलित हुआ । प्राचीन भारतीय पद्धति की विशेषता यह थी कि सूर्य एक दिवस में लगभग एक अंश हटता है । अतः १ घटिका तथा १ पल में क्रमशः १ कला तथा १ विकला । पितामह सिद्धान्त तथा रोमक सिद्धान्त को छोड़ अन्य सिद्धान्त ग्रंथों में वर्षमान ३६५ दिवस १५ घटिका ३० पल से लेकर ३६५ दिवस १५ घटिका ३२ पल तक है । नाक्षत्र सौर वर्ष का आधुनिक मान (निउ कौम्ब के अनुसार) निम्नलिखित है—३६५.२५६३६०४२ + ०००००००००″ (स—१९००) दिवस । इसमें 'स' वर्ष का ईसवी सन् है । सिद्धान्त ग्रन्थों का माध्यमिक वर्ष ३६५.२५८६ दिवस का होता है । अपने सीमित साधनों से भारतीय ज्योतिषियों ने आज से १५०० से १८०० वर्ष पूर्व जो गणना की, वह आज भी प्रायः सत्य है ।

वसंत-संपात का स्थान नक्षत्रों के बीच अचल नहीं है; वरन् पूर्व से पश्चिम को चलायमान है । इस गति को अयन-चलन कहते हैं । एक नक्षत्र के पास से होकर फिर उसी नक्षत्र तक आने में सूर्य को ३६५. २५६ दिवस लगते हैं; पर एक वसंत-संपात से दूसरे वसंत-संपात तक का समय केवल ३६५.२४२ दिवस है । क्रांति वृत्त पर 'अयन चलन' अथवा संपात-बिन्दु की गति वर्ष में ५०″.२५६४ + ०००.″०२२२ (स—१९००) है । पूर्ववत्

यहाँ 'स' से तात्पर्य वर्ष के ईसवी सन् से है। संपात-विन्दु के ध्रुवक में अंतर वर्ष में ४६"००८५०+०."०००२७६(स–१६००) होता है तथा विक्षेप में २०."०४६८–०"००००४५ (स—१६००) होता है। भारतीय पद्धति में सर्वप्रथम नक्षत्रव्यूह की गणना कृत्तिका से आरंभ हुई जहाँ वैदिक काल में वसंत-संपात (Vernal Equinox) होता था।

ज्योतिः सिद्धान्त काल तक यह संपात रेवती नक्षत्र के समीप चला आया था। इसके पश्चात् नक्षत्र अथवा राशि की गणना रेवती से आरंभ करके ही होती रही; परन्तु दिन अथवा रात्रि का मान, सूर्योदय काल, इत्यादि की गणना के लिए वास्तविक वसंत-संपात तथा रेवती नक्षत्र के योग तारा के बीच की दूरी का ज्ञान आवश्यक हो गया। इसे भारतीय ज्योतिष में अयनांश कहते हैं। भिन्न-भिन्न भारतीय ग्रंथों में प्रतिवर्ष अयनांश में कितना अंतर होता है, इसका मान दिया है। यह ४६" से ६०" तक है। आधुनिक ज्योतिष में प्रति वर्ष वास्तविक वसंत-संपात का उस वर्ष के लिए माध्यमिक स्थान ही मेष राशि का आरम्भ माना जाता है तथा उस विन्दु से आरंभ करके खगोलिक विषुव वृत्त तथा सूर्य के क्रांति वृत्त दोनों ही के अंशों की गणना आरंभ होती है। क्रांति वृत्त का ३०° एक राशि होती है। उसी प्रकार खगोलिक विषुव के अंशनाक्षत्र होरांश (Sidereal Hour Angle) ध्रुवक अथवा भभोग कहे जाते हैं। बहुधा उसके प्रतिरूप काल के मान से प्रदर्शित करते हैं, तब उसे असु कहते हैं। कुछ अर्वाचीन भारतीय ज्योतिषियों ने भारतीय पंचांगों में भी राशि, नक्षत्रों की ऐसी गणना प्रचलित करने का प्रयास किया, पर वे सफल न हो सके।

भारतीय ज्योतिष के ग्रह हैं—चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, बृहस्पति, शनि, राहु तथा केतु। राहु तथा केतु आकाश के वह स्थान हैं, जहाँ चन्द्रमा सूर्य के क्रान्ति वृत्त का क्रमशः दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर से दक्षिण दिशा में जाते हुए उल्लंघन करता है। द्वितीय आर्यभट्ट ने वसंत तथा शरत-संपात को भी ग्रह माना था।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण यही भारतीय पंचांगों के पाँच अंग हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा के राशि-भोग एक होने की अवस्था अमावस्या है। सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा की गति लगभग १२$\frac{1}{2}$ गुना अधिक है। दोनों के राशि-भोग में १२° का अंतर होने में जो समय लगता है, उसे तिथि कहते हैं। १५ तिथियों में यह अंतर १८०° (अथवा ६ राशि) का हो जाता है। इस अवस्था में चद्रमा सूर्य की उलटी ओर चला जाता है तथा उसका सारा प्रकाशित अंश पृथ्वी से एक सम्पूर्ण गोल के रूप में दिखाई देता है। इस अवस्था को पूर्णमासी कहते हैं। अमावस्या पूर्णमासी का अथवा किसी भी तिथि के आरंभ या अंत का कोई निश्चित समय नहीं है। दिन-रात में किसी भी समय जब चन्द्रमा तथा सूर्य के राशि-भोग समान हों अथवा उन राशि-भोगों में ६ राशियों अथवा (१८०° अंश) का अंतर हो, तभी अमावस्या या पूर्णमासी होती है। इसी भाँति तिथियों के आरंभ तथा अंत भिन्न-भिन्न समय पर होते हैं। तीस तिथियों के समय का माध्यमिक मान २६·५३०५६ दिवस होता है। अतः प्रत्येक दो मास में तिथियों की संख्या दिवस की संख्या से १ अधिक होती है। इसे क्षय तिथि कहते हैं। अमावस्या से पूर्णमासी तक का समय शुक्ल पक्ष है। इसमें चन्द्रमा का आकार बढ़ता रहता है। इसी भाँति पूर्णमासी से अमावस्या तक का समय कृष्ण पक्ष है। इसमें

चन्द्रमा का आकार घटता रहता है। अमेरिकन नौटीकल अलमनक (Nautical Almanac) के अनुसार सन् १६५२ ईसवी में अमावस्या तथा पूर्णमासी निम्नलिखित मिति तथा समय पर हुई।

पूर्णमासी			अमावस्या		
महीना	मिति	समय	महीना	मिति	समय
जनवरी	१२	०४–५५	जनवरी	२६	२२–२६
फरवरी	११	००–२८	फरवरी	२५	०६–१६
मार्च	११	१८–१४	मार्च	२५	२०–१२
अप्रैल	१०	०८–५३	अप्रैल	२४	०७–२७
मई	६	२०–१६	मई	२३	१६–१८
जून	८	०५–०७	जून	२२	०८–४५
जुलाई	७	१२–३३	जुलाई	२१	२३–३०
अगस्त	५	१६–४०	अगस्त	२०	१५–२०
सितंबर	४	०३–१६	सितंबर	१६	०७–२२
अक्टूबर	३	१२–१५	अक्टूबर	१८	२२–४२
नवंबर	१	२३–१०	नवंबर	१७	१२–५६
दिसंबर	१	१२–४१	दिसंबर	१७	०२–०२
दिसंबर	३१	०५–०५			

ऊपर की तालिका में समय रेल की घड़ियां के अनुसार आधी रात के बाद घंटा मिनट में दिये हैं तथा यह ग्रीनविच का अन्तरराष्ट्रीय समय है। स्थान-विशेष के लिए पूर्णमासी अथवा अमावस्या का समय उस स्थान के प्रचलित समय के अनुसार होगा।

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय वार है। वार सात हैं—रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार तथा शनिवार। सूर्य जब उन्मंडल पर पूर्व दिशा में होता है तब वह समय लंकोदय काल है तथा जब सूर्य उन्मंडल पर पश्चिम दिशा में होता है तब वह समय लंकास्त काल है। लंकोदय काल यदि नाक्षत्र काल (Sidereal Time) में लिखा जाय तो वह भभोग के समान होगा, अतः भभोग को लंकोदय काल भी कहते हैं।
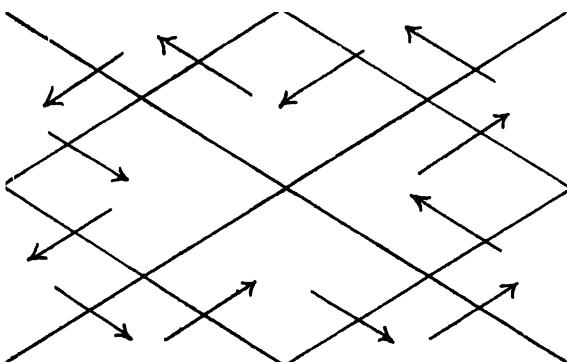
नक्षत्रों के अनुसार खगोलिक विषुववलय के २७ खंड हैं। चन्द्रमा तथा सूर्य के भभोग में एक नक्षत्र का अंतर होने में जो समय लगता है, वह एक योग है। चन्द्रमा तथा सूर्य के भभोग में ६° का अन्तर होने में जो समय लगे, वह करण है।

सूर्योदय से लेकर मध्य रात्रि तक का समय मिश्रमान काल है। मिश्रमान काल का विशेष महत्त्व इसलिए है कि पंचांगों तथा अलमनक में ग्रहों का नित्य-प्रति राशि-भोग तथा शर (अथवा ध्रुवक एवं विक्षेप) किसी स्थान-विशेष (ग्रीनविच, उज्जयनी, काशी) के मिश्र मान काल के लिए दिया होता है। भारतीय पंचांगों में ग्रहों का राशि-भोग, राशि-संख्या, अंश, कला तथा विकला में दिया होता है। राशियों की गणना मेष से आरंभ होती है। मेष राशि में ग्रह का राशि भोग शून्य होगा तथा इस राशि में उसका स्थान अंश, कला तथा विकला में दिया हो। यथा—०/११/४२/४६। इसी भाँति कन्या

राशि में कोई ग्रह २१ अंश ३६ कला तथा ४२ विकला भोग चुका है तो उसका राशि-भोग, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह २१ अंश ३६ कला तथा ४२ विकला अथवा संक्षेप में ५/२१/३६/४२ होगा। भारतीय पंचांगों में शर नहीं दिया होता, पर ग्रहों के प्रकाश तथा रंग का ज्ञान एवं राशि-चक्र के ताराओं से परिचय होने से केवल राशि-भोग जान कर ही ग्रहों को सहज ही पहचाना जा सकता है। पाश्चात्य अलमनक में तो नित्य प्रति ग्रहों के राशिभोग, शर एवं भभोग तथा अपक्रम एवं प्रमुख ताराओं के उस वर्ष के लिए माध्यमिक भभोग अपक्रम सभी दिये रहते हैं, जिनकी सहायता से ग्रहों को पहचानना और भी सुगम है। यथा १ दिसम्बर १६५२ ई० को मंगल ग्रह को देखना है। अलमनक में मंगल का भभोग (अथवा संचार) २० घंटा ३६ मिनट दिया है तथा सूर्य का भभोग १६ घंटा २८ मिनट। अतः मंगल का लंकास्त सूर्य के लगभग चार घंटे पश्चात् होगा। नक्षत्र αखगेश (α—Cygni) का भभोग भी २० घंटा ३६ मिनट है। अतः α खगेश तथा मंगल एक ही होरा वृत्त (Hour Circle) पर हैं। अलमनक में मंगल का अपक्रम –१६°५४′ तथा α—खगेश का+४५°६′ दिया है। इससे मंगल के स्थान का अनुमान कर लिया जा सकता है।

इस समय मंगल ग्रह मकर राशि में था। मकर राशि के सर्वोज्ज्वल नक्षत्र α तथा β का भभोग क्रमशः २० घंटा १५ मिनट तथा २० घंटा १८ मिनट है एवं अपक्रम १२° ३६′ एवं १४° ५६′। मंगल ग्रह इनसे थोड़ा ही दक्षिण-पूर्व को रहेगा।
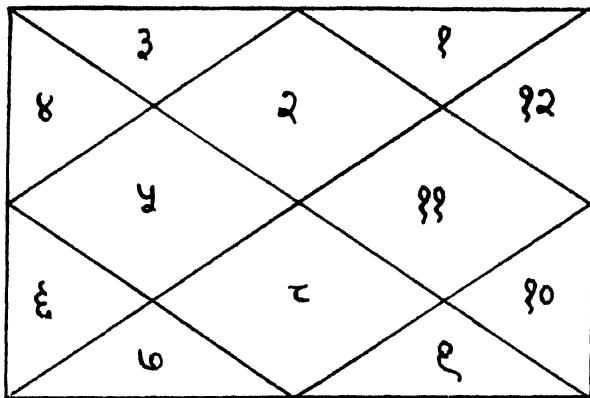
भारतीय ज्योतिषियों की कुण्डली राशि-चक्र का ही दूसरा रूप है। इसमें राशिचक्र को वृत्त के रूप में न दिखा कर नीचे बताये रूप में दिखाया जाता है तथा ग्रहों का स्थान इसी चक्र के कोष्ठकों में दिया होता है। यथा—

चित्र ६।१
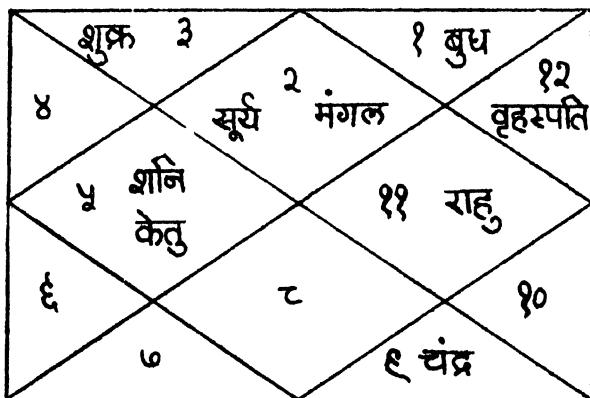
जिस राशि का उदय होता है, उसकी संख्या दाहिने बीच के कोष्ठक से प्रारंभ कर के मेषादि राशियों की संख्या कोष्ठक में देकर जो ग्रह जिस राशि में हो, उसे वहाँ लिख देते हैं। राशियों का लंकोदय तो दो-दो घंटे के अन्तर पर होता है; पर संपात-विन्दु के स्थान तथा दर्शक के अक्षांश के अनुसार भिन्न-भिन्न राशियों का उदय-काल दर्शक के अक्षांश के अनुसार निकाल लिया जाता है। इस प्रकार एक ही समय दिल्ली तथा मद्रास में भिन्न-भिन्न राशियों का उदय संभव है।

उदाहरणार्थ, यदि काशी में ज्येष्ठ कृष्ण ३ को बारह बजे रात्रि के समय कुम्भ अर्थात् ग्यारहवीं राशि का उदय हो रहा है तो राशियों का स्थान निम्नलिखित रूप में होगा—

चित्र ९।२

यदि इस समय बुध मेषराशि में है, सूर्य तथा मंगल वृषराशि में हैं, शुक्र मिथुनराशि में, शनि तथा केतु सिंहराशि में, चन्द्रमा धनुराशि में, राहु कुम्भराशि में तथा वृहस्पति मीन राशि में और राशियों की गणना (१) मेष (२) वृष (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धनु (१०) मकर (११) कुम्भ (१२) मीन हुई तो इस समय की कुण्डली निम्नलिखित हुई—

चित्र ९।३

स्थान तथा समय-विशेष पर जिस राशि का उदय होता रहता है, उसे उस स्थान तथा समय का लग्न कहते हैं। योग, करण, लग्न तथा भिन्न ग्रहों के परस्पर स्थान का फलित ज्योतिष में महत्त्व है। इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत पुस्तक के विषय से बाहर है।

दसवाँ अध्याय

ग्रहों की गति

तालमी, आर्यभट्ट से केप्लर न्यूटन पर्यन्त

सूर्य के चारों ओर भ्रमण करनेवाले ग्रह क्रमशः बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, इन्द्र (Uranus), वरुण (Neptune) तथा प्लूटो हैं। इनमें केवल बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि बिना किसी यंत्र की सहायता से आँखों को दिखाई देते हैं। बुध तो सूर्य के अत्यन्त समीप होने के कारण बहुधा सूर्य के साथ ही उदय-अस्त होता है तथा इस कारण दिखाई नहीं देता। जब बुध का राशि-भोग सूर्य की अपेक्षा कम-से-कम ७°३०′ अधिक हो, तब सूर्यास्त के कुछ पश्चात् पश्चिम क्षितिज पर सूर्य के अस्त होने के स्थान के समीप कुछ क्षणों के लिए बुध को देखना संभव है। इसी प्रकार बुध का राशि-भोग सूर्य की अपेक्षा ७°३०′ कम होने की अवस्था में सूर्योदय के पहले पूर्व क्षितिज के पर सूर्य के उदय स्थान के समीप कुछ क्षणों के लिए बुध के दर्शन हो सकते हैं। बुध तथा सूर्य के राशि-भोग में १५° से अधिक अन्तर नहीं होता। अतः बुध कोई आधा या पौन घंटे से अधिक देर तक दिखाई नहीं देता। यों तो बुध यथेष्ट प्रकाशमान है तथा रात्रि में दिखाई देने से अगस्त्य नक्षत्र से ही कुछ ही कम प्रकाशमान् होता; पर उषा तथा गोधूलि के समय ही दिखाई देने के कारण यह ग्रह सचेष्ट होकर ध्यान पूर्वक देखनेवालों को ही दिखाई देता है। पृथ्वी के एक वर्ष में बुध चार बार से अधिक सूर्य के पूर्व से पश्चिम जाकर फिर पूर्व को चला आता है। अपनी चंचलता के कारण ही इस ग्रह को देवताओं का दूत कहा गया तथा अति चंचल (पारद, पारा) को पाश्चात्य भाषाओं में बुध ग्रह का ही नाम 'मरकरी' दिया गया।

शुक्र ग्रह को सभी लोग संध्या-तारा अथवा भोर का तारा के रूप में जानते हैं। शुक्र की गति भी बुध के ही समान है। अन्तर इतना है कि शुक्र तथा सूर्य के राशि-भोग में एक पूर्ण राशि (अर्थात् ३०° = दो घंटा) तक का अंतर हो जाता है। इसका फल यह होता है कि शुक्रग्रह सूर्यास्त के एक दो घंटे पश्चात् तक अथवा दो घंटा पूर्व से ही दिखाई देता है। शुक्र की ज्योति भी इतनी अधिक है कि स्वच्छ आकाश में यदि उसका स्थान ज्ञात हो तो दिन में सूर्य के उदय होते हुए भी इसे देखना संभव है।

शुक्र से न्यून प्रकाश बृहस्पति ग्रह का है। अन्य ग्रहों की भाँति इसका भी प्रकाश न्यूनाधिक होता रहता है; पर अधिकतर यह सर्वोज्ज्वल तारा लुब्धक से न्यून, पर अन्य सभी

ताराओं से अधिक रहता है। मंगल तथा शनि का प्रकाश बृहस्पति की अपेक्षा कम है। इनका स्थूलत्व + १ से + २ के अन्तर्गत रहता है। इनमें मंगल का प्रकाश किंचित् रक्तवर्ण लगभग ज्येष्ठा अथवा रोहिणी तारा के समान है। शनि का प्रकाश कुछ नीलापन लिये उज्ज्वल है। मंगल, बृहस्पति, शनि, वरुण तथा प्लूटो को दूरग्रह (Superior planets) कहते हैं। इनके विपरीत बुध तथा शुक्र निकट ग्रह (Inferior planets) हैं। दूरग्रहों की खगोल पर गति निम्न प्रकार की होती है। जब इनका राशि-भोग सूर्य के समान हो जाता है तब यह सूर्य के प्रकाश के कारण दिखाई नहीं देते। इस अवस्था को युति (Conjunction) कहते हैं। दूरग्रह भी सूर्य की भाँति खगोल पर पश्चिम से पूर्व हटते हैं; पर सूर्य की अपेक्षा उनकी गति कहीं मंद होती है। फलस्वरूप, दो-तीन सप्ताह के पश्चात् ग्रह सूर्य से पश्चिम चला गया रहेगा तथा सूर्योदय से पूर्व ही पूरब-क्षितिज के समीप दिखाई देगा। नित्यप्रति ग्रह सूर्य से पश्चिम हटता दिखाई देगा तथा इसका उदयकाल नित्य कम होता जायगा। एक समय ऐसा आयगा जब पृथ्वी की गति सीधे ग्रह की दिशा में होगी। इस अवस्था में ग्रह खगोल पर अर्थात् नक्षत्रों के बीच निश्चल दिखाई देगा। पर सूर्य सदा अपनी निश्चित गति से राशियों का अतिक्रमण करता रहेगा। इस अवस्था के पश्चात् ग्रह की गति उलटी दिशा में अर्थात् पूरब से पश्चिम होने लगेगी। इस अवस्था में ग्रह का उदय काल तीव्रता से कमने लगेगा तथा पृथ्वी के निकट आने से ग्रह के प्रकाश में भी वृद्धि होती जायगी। जब पृथ्वी उस ग्रह तथा सूर्य के बीचोबीच आ जायगी तब ग्रह की उलटी दिशा में गति सबसे अधिक होगी। मध्यरात्रि के समय ग्रह याम्योत्तर रेखा पर रहेगा अर्थात् उसी समय उसका उन्नतांश (Altitude) सबसे अधिक होगा। पृथ्वी से ग्रह की दूरी सबसे कम होगी तथा उसका जो भाग पृथ्वी से दिखाई देगा, वह पूरा-का-पूरा सूर्य से प्रकाशित होगा। ग्रह की इस अवस्था को युद्ध (Opposition) कहते हैं तथा दूरवीक्षण यंत्र द्वारा ग्रह के अध्ययन के लिए यही आदर्श अवस्था है। इस अवस्था के पश्चात् ग्रह की उलटी दिशा में अर्थात् खगोल पर पूरब से पश्चिम की गति न्यून होने लगती है; पर उसकी गति सूर्य से उलटी दिशा में होने के कारण मध्य रात्रि तक यह ग्रह याम्योत्तर रेखा के पश्चिम चला गया होता है। एक अवस्था ऐसी आती है जब पृथ्वी ग्रह से सीधे दूर जाती हो। उस अवस्था में पुनः नक्षत्रों के बीच ग्रह स्थिर दिखाई देता है। फिर ग्रह खगोल पर पश्चिम से पूर्व चलने लगता है। परन्तु सूर्य इससे कहीं अधिक तीव्र गति से चलते हुए फिर ग्रह तक पहुँच जाता है तथा दुबारा युति (Conjunction) होती है। इसके पश्चात् ग्रह की सारी उपर्युक्त गति दुहराई जाती है।

भारतीय ज्योतिर्ग्रन्थों में नक्षत्रों के बीच ग्रहों की आठ प्रकार की गति बताई गई है—

(१) वक्र—पूरब से पश्चिम नित्य न्यून होती हुई गति।

(२) अतिवक्र—पूरब से पश्चिम नित्य अधिक होती हुई गति।

(३) विकल—स्थिर अर्थात् नक्षत्रों के बीच एक ही स्थान पर होना।

(४) मंद—पश्चिम से पूरब को क्रमशः अधिक होती हुई गति जिसका मान ग्रह की समगति से न्यून हो।

(५) मंदतर—पश्चिम से पूर्व को क्रमशः न्यून होती हुई गति, जिसका मान सम गति से कम हो।

(६) सम—ग्रह की पश्चिम से पूर्व दिशा में गति का माध्यमिक मान।

(७) शीघ्रतर (अतिशीघ्र)—पश्चिम से पूर्व दिशा में अधिक होती हुई गति, जिसका मान सम गति से अधिक हो।

(८) शीघ्र—पश्चिम से पूर्व दिशा में क्रमशः न्यून होती हुई गति, जिसका मान सम-गति से अधिक हो।

युति के पश्चात् दूर ग्रह की गति क्रमशः 'शीघ्र, सम, मंदतर, विकल, अतिवक्र, वक्र, विकल, मद, सम, शीघ्रतर' होती है, जबतक दूसरी युति की अवस्था न आ जाय। निकट ग्रह कभी युद्ध की अवस्था में नहीं जाते। उनकी युति दो होती है—निकट युति तथा दूर युति। दूर युति के समीप ग्रह सूर्य के समीप तथा आकार में सूक्ष्म रहता है। परन्तु ग्रह का सारा गोल विम्ब प्रकाशित रहता है। निकट ग्रह तथा सूर्य के राशि-भोग में जब अत्यधिक अंतर होता है उस अवस्था में ग्रह अत्यधिक पूर्वीय अथवा पश्चिमीय कोणीयान्तर (Maximum Eastern or Western Elongation) की अवस्था में रहता है। दूरवीक्षण यंत्र से देखने पर ग्रह का प्रकाशित भाग अर्द्धचन्द्राकार दिखाई देता है। निकटयुति के समीप भी ग्रह सूर्य के समीप रहता है; पर इसका आकार बड़ा एवं दूरवीक्षणयंत्र से देखने पर प्रकाशित भाग लघुचन्द्राकार दिखाई देता है। निकटग्रहों की गति इस प्रकार होती है—दूरयुति, शीघ्र, सम (अत्यधिक पूर्वीय कोणीयांतर की अवस्था), मंदतर, विकल, अतिवक्र निकटयुति, वक्र विकल, मंद सम (अत्यधिक पश्चिमीय कोणीयांतर की अवस्था), शीघ्रतर, पुनः दूरयुति।

आर्यभट्ट को छोड़ सभी भारतीय ज्योतिषियों ने तथा संसार की सभी प्राचीनतर सभ्यताओं ने स्वभावतः पृथ्वी को स्थिर तथा ग्रह-नक्षत्रों को इसके चतुर्दिक् चलायमान माना। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, ग्रहों की गति अत्यन्त विलक्षण है। ग्रह भिन्न-भिन्न गति से पृथ्वी को केन्द्र मान कर भ्रमण करते हैं, केवल यह अनुमान उनकी वास्तविक गति का कारण बताने में असमर्थ होगा। प्राचीन भारतीय ज्योतिर्पद्धति में पार्थिव वायुमंडल के बाहर पूर्व से पश्चिम जानेवाले प्रवह वायु की कल्पना की गई थी, जो नित्य नक्षत्रों तथा ग्रहों को पूर्व से पश्चिम ले जाता हुआ उनसे पृथ्वी की परिक्रमा कराता है। इनमें ग्रह अपनी गति से पश्चिम से पूर्व जाते हुए दिखाई देते हैं, जैसे कुम्हार के चाक पर उलटी दिशा में जाती हुई कोई चींटी (सिद्धान्त शिरोमणि ४/४)। प्रत्येक ग्रह के साथ चार अदृश्य शक्तियाँ लगी हैं, जिनके नाम क्रमशः शीघ्रोच्च (Perigee), मंदोच्च (Apogee) तथा राहु एवं केतु अथवा आरोही एवं अवरोही नामक दो पात (Nodes) हैं। शीघ्रोच्च ग्रह के मार्ग में पृथ्वी से निकटतम विन्दु है, मंदोच्च दूरतम तथा दोनों पात, आरोही तथा अवरोही पात, वे सूक्ष्म स्थान हैं जहाँ ग्रह राशि-चक्र का उल्लंघन करके दक्षिण से उत्तर अथवा उत्तर से दक्षिण जाता है। शीघ्रोच्च, मंदोच्च, राहु तथा केतु ग्रह को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट

करके उसकी समगति से आगे-पीछे अथवा उत्तर-दक्षिण को विक्षिप्त करते हैं। सूर्य अपने विशाल आकार के कारण इन शक्तियों द्वारा अधिक आकृष्ट नहीं होता तथा प्रायः एक ही गति से खगोल पर पश्चिम से पूर्व जाता रहता है। फिर भी अपने शीघ्रोच्च अर्थात् सूर्य समीपक (Perihilion) के स्थान पर सूर्य की गति अधिक तथा मंदोच्च अर्थात् सूर्यदूरक (Aphelion) स्थान पर न्यून होती है। चन्द्रमा का गुरुत्व सूर्य की अपेक्षा कम है; अतः शीघ्रोच्च, मंदोच्च राहु तथा केतु का आकर्षण उसे सूर्य की अपेक्षा अधिक विक्षिप्त करते हैं। मंगल आदि तारा ग्रह अपने न्यून गुरुत्व के कारण और भी विक्षिप्त होते हैं।
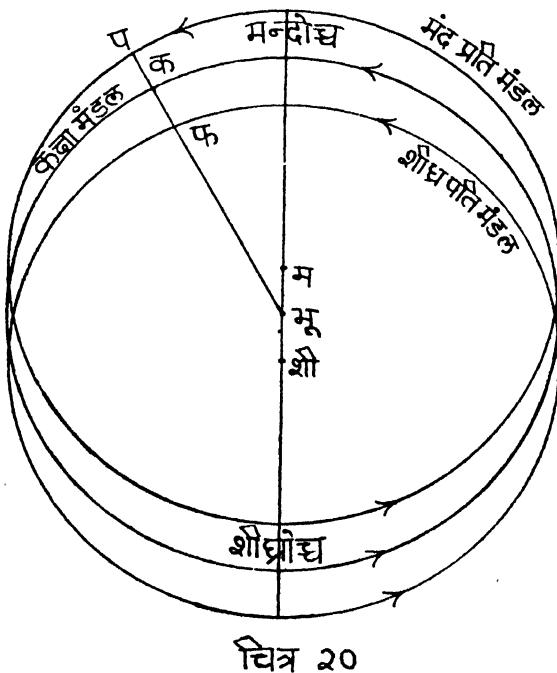
मिस्र में टालमी (Ptolemy) तथा भारत में सभी सिद्धान्तकारों ने ऊपर लिखे भूकेन्द्रीय ज्योतिष का व्यवहार किया; पर अपने ग्रंथ आर्यभटीय के चतुर्थभाग (गोलपादः) के नवें श्लोक में आर्यभट्ट ने—

"अनुलोम गतिर्नौस्थःपश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्। अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्।"

ऐसा लिख कर नक्षत्रों की नित्यगति का कारण पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना बताया। ग्रहों की गति का आर्यभट्ट ने प्रचलित पद्धति के अनुसार ही वर्णन किया तथा सूर्य-चन्द्रमा सहित सभी ग्रहों को पृथ्वी के चतुर्दिक् चलायमान समझा। नक्षत्रों के नीचे क्रमशः शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा के कक्षा-मंडल हैं। प्रत्येक ग्रह अपने-अपने कक्षामंडल पर एक ही गति से चलता है अर्थात् एक अहोरात्र में प्रत्येक ग्रह अपने कक्षा-मंडल की परिधि पर समान दूरी का उल्लंघन करता है। नक्षत्रों की अपेक्षा भिन्न ग्रहों के भिन्न गति से चलने का कारण उनकी पृथ्वी से दूरी में भिन्नता है। वास्तव में गति में कोई भिन्नता नहीं है। सूर्य के कक्षा-मंडल की त्रिज्या-नक्षत्र-मंडल अथवा राशि-चक्र की त्रिज्या का १/६० वाँ अंश है। सभी ग्रहों की अपने कक्षा-वृत्त पर गति एक ही है। अतः यदि किसी ग्रह का भगण काल (अर्थात् किसी नक्षत्र विशेष के पास से चल कर फिर उसी के पास पहुँच जाने का समय 'भ' नाक्षत्र सौर वर्ष हो तथा सूर्य के कक्षावृत्त की त्रिज्या 'स' हो तो ग्रह विशेष के कक्षावृत्त की त्रिज्या 'भ × स' होगी। (आर्य भटीय—द्वितीय खंड—काल-क्रिया-पादः—१२ वाँ श्लोक)। इस पद्धति के लिए वास्तव में चंद्रादि ग्रहों के कक्षावृत्त की त्रिज्या क्या होती, इसका कोई महत्त्व नहीं था। उनका अनुपात उनकी परस्पर तथा नक्षत्रों की गति को देखकर निश्चित हो सकता था तथा ग्रहों के मध्यम (अथवा सूक्ष्म) स्थान की गति निश्चित करने के लिए यही यथेष्ट था। इस पद्धति में प्रवह वायु की आवश्यकता न रही तथा ग्रह-नक्षत्रों की दैनिक गति का वास्तविक कारण पृथ्वी का अपनी धुरी पर गोल-गोल घूमना ही माना गया।

ग्रह-विशेष के मंदोच्च अथवा शीघ्रोच्च की ओर हटे हुए उस ग्रह के मंद तथा शीघ्र प्रतिमंडल होते हैं, जिनकी त्रिज्या (Radius) कक्षावृत्त के समान होती है। वृत्तों के केन्द्रों की परस्पर दूरी को अंत्यफल (Eccentricity) कहते हैं। प्रति मंडल जब कक्षा-

मंडल से शीघ्रोच्च (Perigee) की ओर हटा होता है तब उसे मंद प्रतिमंडल कहते हैं। चित्र २० में 'भू' पृथ्वी का केन्द्र है, 'म' तथा 'शी' क्रमशः भू से ग्रह के मंदोच्च तथा शीघ्रोच्च की दिशा में 'अन्त्यान्तर' पर है। भू, म तथा शी को केन्द्र मानकर ग्रह के कक्षा की त्रिज्या के आनुपातिक तीनों वृत्त (कक्षामंडल, मंद प्रतिमंडल तथा शीघ्र प्रतिमंडल) निर्मित किये गये। यदि किसी काल-विशेष को ग्रह का मध्यस्थान कक्षा-मंडल स्थित 'क' विन्दु पर है तथा भू से क को खींचा हुआ कर्ण मंद-प्रतिमंडल तथा शीघ्र प्रतिमंडल को क्रमशः 'प' तथा 'फ' विन्दु पर छेदे तो 'प' 'क' को मंदफल तथा 'क' 'फ' को शीघ्रफल कहते हैं। भारतीय ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह के भगण से उसके कक्षा-मंडल की त्रिज्या, उसकी शीघ्रोच्च तथा मंदोच्च स्थानों पर की गति से शीघ्रान्त्यान्तर तथा मन्दान्त्यान्तर निकाल कर, कक्षा-मंडल पर ग्रह के स्थान से उसके मध्यम स्थान का निर्णय करके फिर मंद-फल तथा शीघ्र-फल की सहायता से ग्रह के स्पष्ट स्थान को निकालने की विधि दी हुई है।
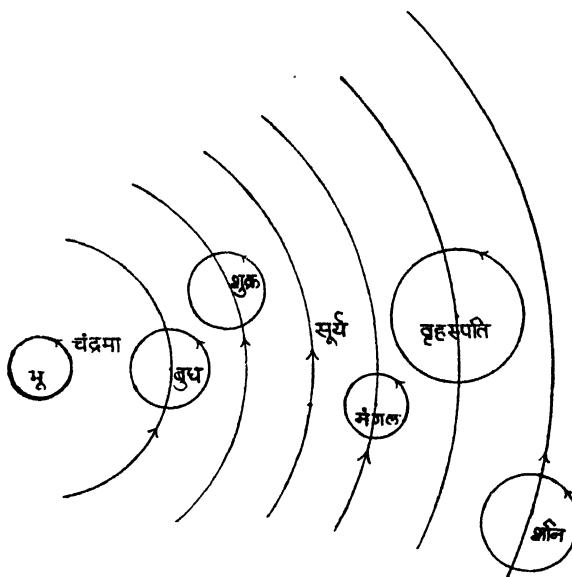
चित्र 20

टालमी तथा भास्कराचार्य ने प्रत्येक ग्रह को अपने मध्यम स्थान के चारों ओर शीघ्रोच्च तथा मन्दोच्च के बीच की दूरी अर्थात् अन्त्यफल को व्यास मानकर भ्रमण करता

हुआ समझा तथा इसी प्रणाली द्वारा ग्रहों के स्पष्ट स्थान को निकालने की विधि निकाली (देखिए चित्र २१)।

चित्र २१

ईसवी सन् १५४३ में निकोलास कौपरनिकस ने 'ड रिवोल्यूशनिबस ऑरबिअस केले स्टिअम्' में यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी इसके चतुर्दिक् भ्रमण करती है। सोलहवीं शताब्दी के सर्वप्रमुख ज्योतिषी टाइकोब्रेही (१५४६—१६०१) ने कौपरनिकस के सिद्धान्त को इसलिए अस्वीकार किया कि अत्यन्त सूक्ष्म यंत्रों द्वारा भी टाइकोब्रेही ने नक्षत्रों के पारस्परिक स्थान में पृथ्वी के भ्रमण के कारण कोई अंतर नहीं पाया। वास्तव में यह अंतर होता है; पर अत्यन्त सूक्ष्म है। टाइकोब्रेही के शिष्य जॉन केपलर ने ब्रेही द्वारा लिये गये माप-जोख से ही ग्रहों की गति के विषय में निम्नलिखित नियम निकाले —
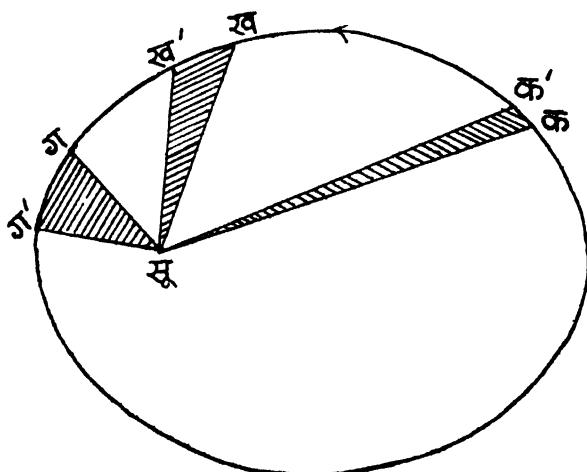
(१) प्रत्येक ग्रह एक दीर्घ वृत्त की परिधि पर भ्रमण करता है जिसके दो प्रति स्वरों (Foci) में से एक पर सूर्य रहता है।

(२) सूर्य से ग्रह को खींची हुई सीधी रेखा समान समय में समान क्षेत्रफल का आतिक्रमण करती है।

(३) ग्रह की एक परिक्रमा के समय का वर्ग ग्रह की सूर्य से माध्यमिक दूरी के घन से अनुपातिक है।

चित्र-संख्या २२ में ग्रह 'क, ख, ग' दीर्घ वृत्त पर भ्रमण कर रहा है, जिसके एक प्रतिस्वर पर सूर्य 'सू' है। यदि ग्रह के क, ख तथा ग स्थान से 'ट' घंटा व्यतीत होने पर ग्रह

का स्थान क्रमशः क' ख' तथा ग' हो तो सू क क', सू ख ख' तथा सू ग ग' के क्षेत्रफल समान होंगे।

चित्र २२

यदि ग्रह तथा सूर्य की परस्पर दूरी का माध्यमिक मान 'स' है तथा सूर्य के चतुर्दिक् भ्रमण का समय (रवि भगण काल) 'र' है तो सभी ग्रहों के लिए $\frac{र^२}{स^३}$ का मान एक ही होगा।

लगभग इसी समय गैलिलिओ ने दूरवीक्षण यंत्र का आविष्कार कर के बुध तथा शुक्र की शृंगोन्नति तथा शृंगावनति (चन्द्रमा की भाँति आकार के अंतर) को देखा, जिससे कौपरनिकस के सिद्धान्तों की और भी पुष्टि हुई। केपलर के दूसरे नियम से सूर्य से ग्रह की दूरी तथा उसकी गति में अवस्थित सम्बन्ध परिभाषित हो ही गया था।

ईसवी सन् की सतरहवीं शताब्दी में न्यूटन ने केपलर के नियमों की सहायता से गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त तथा गतिविज्ञान (Dynamics) के नियमों का उल्लेख किया।

न्यूटन के गति के नियम निम्नलिखित हैं—
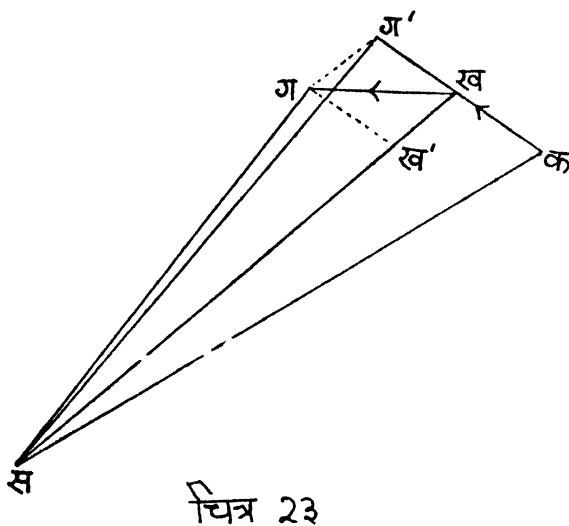
(१) कोई वस्तु अपनी स्थिरता अथवा एकरूप ऋजुरेखीय गमता की अवस्था में तबतक रहती है जबतक कोई वाह्य आरोपित बल उस वस्तु की वैसी अवस्था में परिवर्त्तन न कर दे।

(२) वस्तु की गमता तथा आरोपित बल दोनों सदिश राशि (Vector Quantity) हैं तथा गमता में परिवर्त्तन बल के अनुपात में तथा बल की ही दिशा में होता है।

(३) प्रत्येक क्रिया की उससे विपरीत उसी मान की प्रतिक्रिया होती है।

केपलर के द्वितीय नियम से न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक ग्रह सूर्य की ओर आकर्षित होकर ही उसकी परिक्रमा करता है। यह न्यूटन के नियमों से सहज ही सिद्ध किया जा सकता है।

चित्र-संख्या २३ में स सूर्य का स्थान है तथा 'क-ख-ग' क्रमशः 'ट' घंटे के अंतर पर ग्रह के तीन अनुगामी स्थान हैं। यदि सूर्य तथा ग्रह में कोई आकर्षण न होता तो

चित्र 23

न्यूटन के प्रथम नियम के अनुसार ग्रह 'क-ख' की ऋजुरेखा की सीध में 'ख' से 'ट' घंटे पश्चात् ग' विन्दु पर जा पहुँचता। 'क' से 'ख' की यात्रा में भी 'ट' घंटे ही लगते हैं। ग्रह की गति एक रूप होती है, अतः क ख = ख ग'। यदि 'ट' घंटे का मान अत्यन्त न्यून रखा जाय तो स क, स ख तथा स ग में अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म होगा। स क ख त्रिभुज तथा स ख ग' त्रिभुज एक दूसरे के समान होंगे। अतएव उनका क्षेत्रफल भी समान होगा। यदि ग्रह पर सूर्य के आकर्षण का बल आरोपित है तो इस बल के फलस्वरूप वह सूर्य की दिशा में हटता जायगा। यदि ख के ट घंटे पश्चात् सूर्य ग विन्दु पर है तो ऋजु रेखा ग' ग, ख स के समानान्तर होगी; क्योंकि ग्रह की गति में अंतर सूर्य की दिशा में ही हो सकता है। ग से ग' ख के सामान्तर रेखा ग ख' ख स रेखा को ख' विन्दु पर छेदती है। ग ग' ख ख' एक समानान्तर चतुर्भुज है; अतएव त्रिभुज ग ख ख', त्रिभुज ख ग ग' के सब प्रकार समान हैं। अतः त्रिभुज 'ग ख' ख' का क्षेत्रफल त्रिभुज 'ख ग'ग' के क्षेत्रफल के सामान है। ग ग' तथा 'ख ख' स' एक दूसरे के समानान्तर हैं; अतः त्रिभुज 'ग ख ग'' का क्षेत्रफल त्रिभुज 'ग स ग'' के क्षेत्रफल के समान होगा। यदि ट का मान कम करके 'क-ख-ग' में अन्तर अत्यन्त न्यून कर दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि 'स क ख' का क्षेत्रफल 'स ख ग' के क्षेत्रफल के समान होगा।

केपलर के तृतीय नियम से न्यूटन ने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण का नियम निकाला। उदाहरणार्थ, सुगमता के लिए ग्रहों के पथ को दीर्घ वृत्त न मान कर सामान्य वृत्त माना जाय। (वृत्त दीर्घ वृत्त का वह रूप है, जिसमें उसके दोनों प्रतिस्वर एक स्थान पर आ जाते हैं)। सूर्य का गुरुत्व 'म' है तथा ग्रह का गुरुत्व 'ज'। ग्रह के वृत्त की त्रिज्या अर्थात् सूर्य से ग्रह की दूरी 'त' है। ग्रह का रवि भगण काल 'र' है। वृत्त की परिधि तथा व्यास के अनुपात को ग्रीक अक्षर π द्वारा व्यक्त करते हैं।

न्यूटन के द्वितीय गति-नियमों से यह सिद्ध हो सकता है कि ग्रह का सूर्य केन्द्रीय गति वर्धन $त \times \left(\frac{२\pi}{त}\right)^२$; अतः गमता वर्धन हुआ $ज \times त \times \frac{४\pi^२}{र^२}$। सूर्य का गुरुत्व म है। यह गमता यदि गुरुत्व के कारण है तो यह 'म' तथा 'ज' के गुणनफल के आनुपातिक होना चाहिए। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के बल को दोनों गुरु वस्तुओं की दूरी के प्रतीप (Inverse) के वर्ग के आनुपातिक माना। अतः गुरुत्वाकर्षण बल $= त्व \times \frac{म \times ज}{त^२}$। यहाँ त्व आनुमानिक संख्या है। न्यूटन के तृतीय गति-नियम से

$$त्व \times \frac{म \times ज}{त^२} = ज \times त \times \frac{४\pi^२}{र^२}$$

$$अतः\ त्व = \frac{४ \times \pi^२}{म} \times \frac{त^३}{र^२}$$
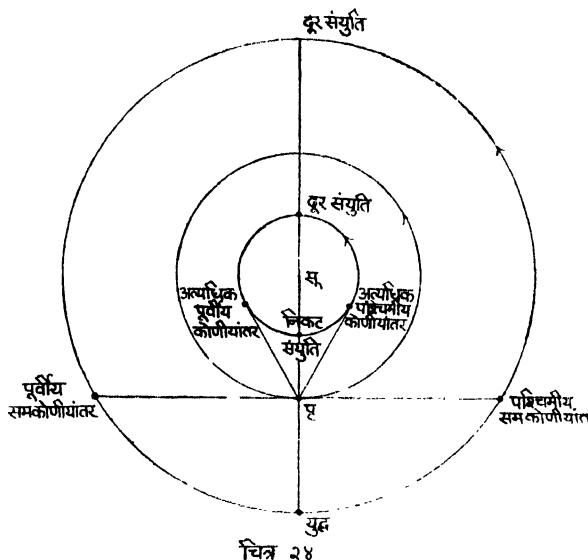
केपलर के नियमों से $त^३/र^२$ अपरिवर्त्ती है। सौर परिवार के लिए म भी अपरिवर्ती है, अतः त्व अपरिवर्त्ती हुआ। यही न्यूटन का विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण का नियम है।

वास्तव में इस नियम से ग्रह के गुरुत्व का भी सूर्य पर फल होना चाहिए। इस नियम की सहायता से केपलर के तृतीय नियम का शुद्ध रूप निकाला जा सकता है, जो वेधफल के अधिक समीप है।

ग्रहों की स्पष्ट गति उनकी अपने-अपने दीर्घ वृत्त में भ्रमण तथा पृथ्वी के अपने दीर्घ वृत्त में भ्रमण दोनों ही का फल है। आधुनिक प्रणाली के अनुसार जब ग्रह पृथ्वी तथा सूर्य की सीध में सूर्य के समीप रहता है तब युति (Conjunction) होती है। ग्रह जब सूर्य से परे होता है तब दूर संयुति (Superior Conjunction) होती है। जब ग्रह सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य में चला आता है तब निकट संयुति (Inferior Conjunction) होती है। दूर ग्रह (जो पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से दूर है) केवल दूर संयुति की अवस्था में आते हैं। निकट ग्रह बुध तथा शुक्र, दूर तथा निकट संयुति दोनों ही अवस्थाओं में आते हैं। दूर ग्रह जब पृथ्वी से सूर्य की अपेक्षा उलटी दिशा में दिखाई देता है तब युद्ध(Opposition) की अवस्था कही जाती है। ग्रह-पृथ्वी-सूर्य कोण को ग्रह का कोणीयान्तर (Elongation) कहते हैं। दूर ग्रह का कोणीयान्तर जब ९०° होता है तब ग्रह अपनी समकोणीयान्तर (Quadrature) अवस्था में कहा जाता है। निकट ग्रहों का समकोणीयान्तर कभी नहीं होता। उनकी केवल अत्यधिक पूर्वीय तथा पश्चिमी कोणीयान्तर की अवस्थाएँ होती हैं। जब तक ग्रह का संचार (Right Ascension) बढ़ता जाता है अर्थात् नक्षत्रों के बीच वह पश्चिम से पूर्व

हटता जाता है, तब तक उसकी मार्ग गति (Direct Motion) होती है। इसके विपरीत गति को वक्रगति (Retrograde motion) कहते हैं। ग्रह का पृथ्वी से निकटतम स्थान शीघ्रोच्च (Perigee) तथा दूरतम स्थान मंदोच्च (Apogee) है। (देखिए चित्र-संख्या २४)

चित्र २४

चित्र में उदाहरण की सुविधा के लिए ग्रहों के भ्रमण कक्ष को वृत्त माना गया है। पृथ्वी का स्थान पृ है। पृथ्वी के इस स्थान के लिए दूर तथा निकट ग्रह की ऊपर लिखी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ दिखाई गई हैं। ग्रहों की वक्र इत्यादि गति पृथ्वी तथा ग्रह-विशेष के अपनी-अपनी कक्षा में प्रवेग(Velocity) तथा ग्रह की अवस्था विशेष (अथवा कोणीयांतर) पर निर्भर करता है। अपनी-अपनी कक्षाओं में ग्रहों के प्रवेग तथा कक्षाओं की त्रिज्या केपलर के तृतीय नियम द्वारा सम्बद्ध हैं।

ग्रह-विशेष द्वारा नक्षत्र व्यूह की सम्पूर्ण परिक्रमा के समय को उस ग्रह का 'भगण काल' अपनी कक्षा अर्थात् सूर्य के चतुर्दिक दीर्घवृत्त की परिक्रमा के समय को 'परिक्रमण काल' तथा एक दूर-संयुति से दूसरी दूर-संयुति तक के समय को ग्रह का 'संयुति वर्ष' कहते हैं।

यदि पृथ्वी का 'परिक्रमण काल' पृ है तथा ग्रह-विशेष का परिक्रमण काल ग्र है, तथा ग्रह का संयुति वर्ष यु है तो

$$\frac{१}{यु} = \frac{१}{ग्र} - \frac{१}{पृ}$$
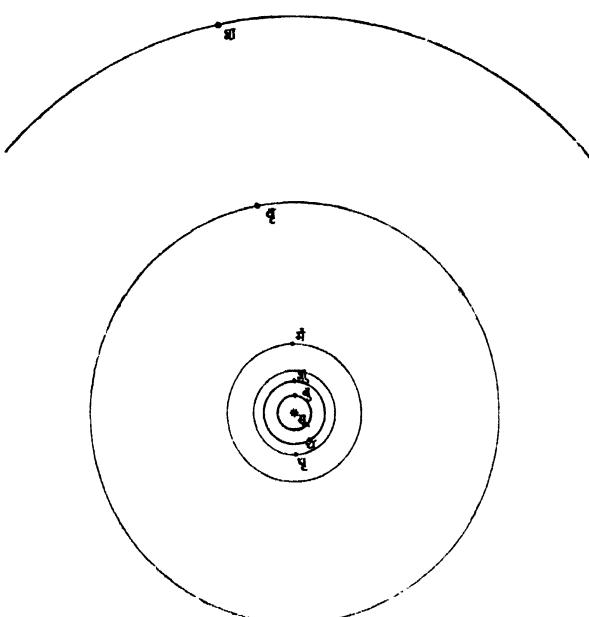
पृथ्वी का परिक्रमण काल नाक्षत्र सौर वर्ष के समान है। जैसा पहले बताया जा चुका है, सायन सौर वर्ष इससे कुछ कम है। सायन सौर वर्षों में भिन्न-भिन्न ग्रहों के परिक्रमण काल तथा संयुतिवर्ष के मान निम्नलिखित प्रकार हैं—

ग्रह	परिक्रमण काल का सायन वर्षमान	संयुति वर्ष का सायन वर्षमान
बुध	०·२४०८५	०·३१७२६
शुक्र	०·६१५२१	१·५९८७२
पृथ्वी	१·००००४	....
मंगल	१·१८८०८९	२·१३५३९
वृहस्पति	११·८६२२३	१·०९२११
शनि	१९·४५७७२	१·०३५१८
इन्द्र	८४·०१५२९	१·०१२०९
वरुण	१६४·७८८२९	१·००६१४
प्लूटो	२४७·६९६८	१·००४०८

भारतीय काल-गणना की प्रसिद्ध युग-पद्धति ग्रहों की संयुति की पद्धति है। इसके अनुसार एक महायुग ४३२०००० नाक्षत्र सौर वर्ष का होता है, जिसके ४/१०, ३/१०, २/१० तथा १/१० अंश क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग होते हैं। ग्रहों की गति ऐसी है कि एक महायुग में क्रमशः बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति तथा शनि के १७९३७०२०/७०२२३८८/२२९६८२४/३६४२२४ तथा १४६५६४ भगण होते (आर्यभटीय) हैं। इस पद्धति के साथ ग्रहों की सूर्य से दूरी के आधुनिक मान के व्यवहार से किसी भी दिन के लिए ग्रहों का माध्यमिक स्थान निकाला जा सकता है। ग्रहों की कक्षा को स्थूल गणना के लिए वृत्त माना जा सकता है। यदि पृथ्वी की कक्षा की त्रिज्या १ है तो बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति तथा शनि की कक्षाओं की त्रिज्याएँ क्रमशः ०·३८७०९९, ०·७२३३३२, १·५२३६९१, ५·२०२८०३ तथा ९·५३८८४३ हैं। कलियुग के आरंभ में पृथ्वी से देखने पर सभी ग्रह तथा सूर्य एक ही स्थान पर थे तथा यह स्थान रेवती नक्षत्र (ς Piscium) का स्थान था। जब आर्यभट्ट ने कुसुमपुर (पटना) में अपना ग्रंथ लिखा था तब कलियुग के आरंभ से ३६०० वर्ष व्यतीत हुए थे तथा आर्यभट्ट की अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। सन् १९५२ ईसवी के ९ अप्रैल को ५ बजे सवेरे सूर्य रेवती नक्षत्र में था। कलियुग के प्रारंभ से तबतक ५०५३ नाक्षत्र सौर वर्ष व्यतीत हो चुके थे। महायुग अर्थात् ४३२०००० नाक्षत्र सौर वर्ष में क्रमशः बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु (वृहस्पति) तथा शनि के १७९३७०२०, ७०२२३८८, ४३२००००, २२९६८२४, ३६४२२४ तथा १४६५६४ भगण (Revolutions) होते हैं। इससे ५०५३ नाक्षत्र सौर वर्षों के भगण को निकाल कर कक्षाओं की त्रिज्या के अनुपात से खींचे गये वृत्तों में ग्रहों का स्थान दिखाया जा सकता है। पृथ्वी का स्थान ऐसा होगा कि सूर्य रेवती नक्षत्र (ς Pis cium) की सीध में दिखाई दे। अन्य ग्रहों का सूर्य

से कोणीयांतर उनकी कक्षाओं की त्रिज्या तथा अपनी-अपनी कक्षाओं में उनके स्थान पर निर्भर करेगा। नाक्षत्र सौर वर्ष का मान ३६५·२५६ दिन अर्थात् ३६५ दिन ६ घंटा ६ मिनट १०½ सेकेंड है। इस प्रकार आनेवाले वर्षों में सूर्य की रेवती नक्षत्र से संयुति की मिति तथा उसका समय निकाला जा सकता है। कलियुगारंभ से व्यतीत नाक्षत्र सौर वर्षों की संख्या तथा ग्रहों के उपर्युक्त भगण से अपने-अपने वृत्त में उन ग्रहों का उस समय के लिए स्थान निश्चित किया जा सकता है। (देखिये चित्र संख्या २५)

चित्र २५

यदि अन्य किसी समय के लिए ग्रहों का स्थान निश्चित करना है तो उसके लिए ग्रहों की दैनिक गति की संख्याओं का व्यवहार हो सकता है। बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु तथा शनि की दैनिक गति क्रमशः ४°·०६२३३८, १°·६०२१३१, ०°·६८५६०६, ०°·५२४०३३, ०°·०८३०६१ तथा ०°·०३३४६० है।

इस प्रकार प्राप्त किये गये स्थान कोई १५° तक अशुद्ध हो सकते हैं, क्योंकि वास्तव में कलियुगारंभ में सभी ग्रह युति की अवस्था में न होकर एक नक्षत्र में अर्थात् लगभग १५° के अंतर्गत थे। बुध तथा मध्यम शुक्र का सूर्य केन्द्रीय भोग लगभग ३४५°·० तथा शनि का भोग लगभग १५° था। पृथ्वी से देखने पर सभी ग्रह कोई १५° के अन्तर्गत दिखाई देते थे।

फिर यह गणना ग्रहों की कक्षा के वृत्त न होकर दीर्घ वृत्त होने तथा पृथ्वी की कक्षा के धरातल से भिन्न होने के कारण भी अशुद्ध है। वास्तविक भारतीय ज्योतिषीय गणना तथाकथित सृष्टि के आरंभ (६ अप्रैल १६५२ से १६५५८८८५०५३ नाक्षत्र सौर वर्ष पूर्व) से प्रारंभ होती है, जब सूर्य तथा चन्द्रमा सहित सभी ग्रहों के पात (Nodal Points) तथा मंदोच्च (Perigee) भी ग्रहों के साथ रेवती नक्षत्र के स्थान पर ही रहे होंगे।

इन सभी की महायुग तथा कल्प (१००० महायुग) में गति भारतीय ग्रंथों में दी हुई है। बुध के परिक्रमण काल का माध्यमिक मान लग ८८ दिवस है तथा संयुति काल का लगभग ११६ दिवस। दूर-संयुति से अत्यधिक पूर्वीय अथवा पश्चिमीय कोणीयांतर ३६ दिन पीछे या पहले होता है। इसी प्रकार शुक्र का संयुति वर्ष (माध्यमिक) ५८४ दिवस का है तथा निकट संयुति से ७१ दिन पहले और पीछे अत्यधिक पूर्वीय तथा पश्चिमी कोणीयांतर होते हैं। १६५२ ईसवी में १८ फरबरी ६ जून तथा २४ सितंबर को बुध की दूर-संयुति एवं ४ अप्रैल, ७ अगस्त तथा २७ नवंबर को बुध की निकट संयुति हुई थी। २० अगस्त १६५१ ई० को शुक्र की निकट संयुति, १२ जून १६५२ ई० को दूर संयुति तथा पुनः २६ मार्च १६५३ ई० को निकट संयुति हुई थी। मंगल की संयुति १८ मई १६५१ ई० को, युद्ध २७ अप्रैल १६५२ ई० को तथा पुनः संयुति ६ जुलाई १६५३ ई० को हुई। बृहस्पति प्रतिवर्ष लगभग एक राशि अतिक्रमण करता है। १६५३ ईसवी में यह मेष राशि के कृत्तिका नक्षत्र के समीप था। १६५४ ईसवी में बृहस्पति वृष राशि में था, इसीलिए कुम्भ का मेला हुआ। शनि लगभग २½ वर्ष में एक राशि अतिक्रमण करता है तथा १६५३ ई० में कन्या तथा तुला राशियों के बीच में था। १६५६ ई० में यह वृश्चिक राशि में रहेगा। बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि की कक्षाएँ पृथ्वी की कक्षा के धरातल के साथ अपने-अपने धरातलों से क्रमशः ७°, ३°२३′३०१″, १°५१′, १°१४′१३″ तथा २°२६′२६″ का कोण बनाती हैं। पर पृथ्वी से देखने पर सूर्य के क्रांतिवृत्त से इनकी दूरी २° या २½° से अधिक नहीं दिखाई देती। मंगल, गुरु तथा बृहस्पति के अपक्रम में पृथ्वी अथवा सूर्य को केन्द्र मानने से अधिक अंतर नहीं होता; पर बुध तथा शुक्र सूर्य के समीप हैं तथा पृथ्वी अपेक्षाकृत दूर है। इसलिए पृथ्वी से देखने पर सूय तथा बुध अथवा शुक्र के अपक्रम का अंतर न्यून हो जाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

उल्का, धूमकेतु तथा आकाशगंगा

उल्काएँ प्रकाश की वह रेखाएँ हैं जो सहसा रात्रि को आकाश में दिखाई देती हैं। देखने में यह टूट कर गिरते हुए ताराओं जैसी लगती है। इनका रंग कभी लाल होता है, कभी उजला और कभी नीला। कभी-कभी ये टूटते तारे पृथ्वी तक पहुँच जाते हैं। इनके अध्ययन से लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये अलग-अलग प्रस्तर-खंड हैं, जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिंचकर वायुमंडल की रगड़ से गर्म होकर जलने लगते हैं। तीव्र गति उल्काएँ श्वेत अथवा नील वर्ण तथा मंदगति उल्काएँ रक्त वर्ण दिखाई देती हैं।

प्राचीन काल में उल्काओं को उत्पात का प्रतीक माना गया था। उल्काओं का विशेष अध्ययन अर्वाचीन काल में ही हुआ है। उल्काएँ दो प्रकार की पाई गई हैं। एक तो आकस्मिक (Sporadic Meteors) जो किसी भी दिन किसी दिशा में दिखाई दें; पर अधिकांश उल्काएँ पुंजीभूत रूप में किसी विशेष मिति को अर्थात् पृथ्वी के भ्रमण मार्ग के किसी विशेष स्थान पर दिखाई देती हैं। प्रत्येक उल्का-पुंज का खगोल पर कोई केन्द्र-विशेष होता है। उल्का-पुंज का नाम, केन्द्र जिस नक्षत्र-मंडल में हो उसीके नाम पर होता है। जैसे सिंह उल्का (Leonids), अभिजित् उल्का (Lyrids)। कुछ प्रमुख उल्का-पुंज के नाम उनके उल्का-केन्द्र के भभोग एवं अपक्रम तथा उनके दिखाई देने की तिथियाँ निम्नलिखित तालिका में दी गई हैं। तिथियों में किसी वर्ष एक दिन तक का भेद हो सकता है।

उल्काओं के नाम	भभोग	उल्का केन्द्र अपक्रम	तिथि
सिंह-उल्का	१५२°	२२° उत्तर	१५–१६ नवंबर
	१५५°	१४° उत्तर	२२–२८° फरवरी
	१६६°	४° उत्तर	१– ४ मार्च
अभिजित्-उल्का	२७१°	३३° उत्तर	२०–२२ अप्रैल
	२८४°	४४° उत्तर	१६ अगस्त
कुम्भ-उल्का	३३७°	१° दक्षिण	२–६ मई

शेषनाग उल्का	२४५°	६४° उत्तर	२७–३० जून
मकर उल्का	३०५°	१२° दक्षिण	२४–२६ जुलाई
उपदानवी उल्का	२३°	४२° उत्तर	३० जुलाई ३ अ०
	२५°	४३° उत्तर	१७–२३ नवंबर
वराह उल्का	४६°	५७° उत्तर	१०–१२ अगस्त

धूमकेतु अर्थात् पुच्छल ताराओं का प्राचीन काल में भी अध्ययन हुआ था; परन्तु उस समय छपी पुस्तकों का अभाव था। किसी एक देश में एक लगातार एक-दो शताब्दियों तक ही ज्योतिष इत्यादि शास्त्रों का विशेष अध्ययन हो सका। पुच्छल तारा विशेष कई शताब्दियों के अनन्तर दिखाई देते हैं। भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता की टीका में पराशर संहिता से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

पैतामहश्चल केतु पाँच सौ वर्ष के अनन्तर दिखाई देता है। उद्दालक श्वेतकेतु एक सहस्र वर्ष के अनन्तर दिखाई देता है। काश्यप श्वेतकेतु पाँच सहस्र वर्षों के अनन्तर दिखाई देता है। इत्यादि।

दूरवीक्षण यंत्र के आविष्कार के उपरान्त प्रतिवर्ष कोई पाँच-छः धूमकेतु देखे गये हैं। इनमें से कोई २० प्रतिशत पृथ्वी पर कहीं-न-कहीं आँखों को दिखाई देते हैं। १५०० ईसवी से १८०० तक कोई ८० धूमकेतु संसार के किसी न किसी भाग में आँखों को दिखाई दे सके थे; पर १८०० से १९१५ तक ही ७८ ऐसे केतुओं का वर्णन है, जो आँखों को दिखाई दे सके। इन सभी में एक प्रकाशमान केन्द्र तथा एक या दो पुच्छल अंश होते हैं। वेधशालाओं में पिछले तीन शताब्दियों में अनेक धूमकेतुओं के स्थान तथा गति को मापा गया है, जिससे यह पता चलता है कि धूमकेतु ग्रहों की भाँति सूर्य के चतुर्दिक अति दीर्घ वृत्तों में भ्रमण करते हैं, जिसकारण सूर्य के समीप उनका मार्ग प्रति स्वर के समीपवर्त्ती परिवलय खंड (Like the portion of a parabola near its focus) जैसा होता है।

धूमकेतुओं में सबसे प्रसिद्ध हेली पुच्छल (Halley's Comet) है, जो १९१० ईसवी में दृष्टिगोचर हुआ था तथा पुनः १९८५ ई० में दिखाई देगा।

आकाश गंगा (Milky way) खगोल पर फैला हुआ एक विशाल वलय है, जो वास्तव में छोटे-छोटे ताराओं का सघन-समूह है। यह उत्तर ध्रुव के समीप कपि (Cepheus) मंडल से आरंभ करके खगेश-मंडल को जाता है। वहाँ पर यह वलय दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है। एक भाग पूरब ओर धनिष्ठा, श्रवण, धनु इत्यादि मंडलों की ओर जाता है तथा दूसरा भाग सीधे वृश्चिक-मंडल की ओर जाता है। दोनों भाग बड़वा त्रिशंकु एवं अर्णवयान मंडल के समीप से होकर मृगव्याध-मंडल के समीप एक हो जाते हैं। मिथुन राशि तथा काल-पुरुष के मंडल के बीच से होकर, ब्रह्मा-मंडल, बराह-मंडल तथा हिरण्याक्ष-मंडल का अतिक्रमण करके फिर आकाश गंगा कपि-मंडल के समीप आ पहुँचती है। पौराणिक कथाओं से संबंध रखनेवाले नक्षत्र मंडलों में अधिकांश आकाश गंगा के समीपवर्त्ती है।

बारहवाँ अध्याय

उपग्रह—भृंङ्गोन्नति तथा ग्रहण

पृथ्वी पर रहनेवालों के लिए सूर्य के पश्चात् चन्द्रमा ही सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रह है। समुद्री ज्वार-भाटा का कारण चन्द्रमा है तथा रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश सुन्दर ही नहीं, वरन् उपयोगी भी होता है। चन्द्रमा पृथ्वी के आकर्षण से उसके चतुर्दिक भ्रमण करता है। चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी की ध्रुवा घूमती रहती है, जिससे अयन-चलन होता है। चन्द्रमा की गति के अध्ययन से ही ज्योतिषशास्त्र का आरंभ हुआ तथा उसीसे अर्वाचीन काल में गुरुत्वाकर्षण के नियम की पुष्टि तथा विश्व की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्तों का आरंभ हुआ।

चन्द्रमा की खगोलिक गति सूर्य की अपेक्षा तेरह गुना अधिक है। सूर्य नित्यप्रति पश्चिम से पूरब लगभग १° हटता है, पर चन्द्रमा की नित्यप्रति की माध्यमिक गति १३° है। जब चन्द्रमा तथा सूर्य का राशि-भोग एक ही रहता है तब अमावस्या होती है तथा जब दोनों के राशि-भोग में पूरे छः राशि (अर्थात् १८०°) का अन्तर होता है तब पूर्णिमा होती है। अमावस्या को सूर्य तथा चन्द्रमा की संयुति (Conjunction) तथा पूर्णिमा को युद्धा (Opposition) भी कहते हैं। चन्द्रमा का भगण काल अथवा नाक्षत्र भगण काल (Sidereal Period) वह अवधि है, जिसमें चन्द्रमा एक नक्षत्र-विशेष के पास से चलकर फिर उसीके पास आ पहुँचे। इस अवधि का माध्यमिक मान २७ दिवस ७ घंटे, ४३ मिनट ११·६ सेकंड अथवा २७·३२१६६ सावन दिवस है। अमावस्या अथवा पूर्णिमा से दूसरी अमावस्या अथवा पूर्णिमा तक भी अवधि को चान्द्रमास कहते हैं। चान्द्रमास का माध्यमिक मान २९ दिवस १२ घंटे ४४ मिनट २·८७ सेकेंड अथवा २९·५३०५९ दिवस हैं। चन्द्रमा के उपर्युक्त भगण काल का अयन-चलन से कोई सम्बन्ध नहीं। यदि चन्द्रमा का भ्रमण काल किसी नक्षत्र विशेष की अपेक्षा न माप कर

सूर्य के क्रांति वृत्त के संपात विन्दुओं की अपेक्षा मापा जाय तो उस अवधि को सायन भगण काल (Tropical period) कहते हैं। ३६५ दिवस में अयन-चलन लगभग ५०″ होता है। अतः चन्द्रमा के नाक्षत्र भगण काल (Sidereal period) में लगभग ४″ अयन-चलन होता है। अयन-चलन पूरब से पश्चिम होता है। अतएव चन्द्रमा का सायन भगण काल नाक्षत्र भगण काल की अपेक्षा कम है। सायन भगण काल का माध्यमिक मान २७·३२१५८ दिवस है। यदि समय को दिवस में लिखा जाय तो एक दिवस में चन्द्रमा राशिचक्र का—

$\frac{}{\text{चान्द्र नाक्षत्र भगण काल}} \times ३६०^\circ$ अतिक्रमण करता है। इतने ही समय सूर्य राशिचक्र का

$\frac{१}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}} \times ३६०^\circ$ अतिक्रमण करता है। एक चान्द्रमास में चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा ३६०° आगे चला जाता है। अतएव एक दिवस में चन्द्रमा तथा सूर्य के कोणीयान्तर में

$\frac{१}{\text{चान्द्रमास}} \times ३६०^\circ$ की वृद्धि होगी।

$$\text{अतः } \frac{१}{\text{चान्द्र नाक्षत्र भगण काल}} - \frac{१}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}}$$
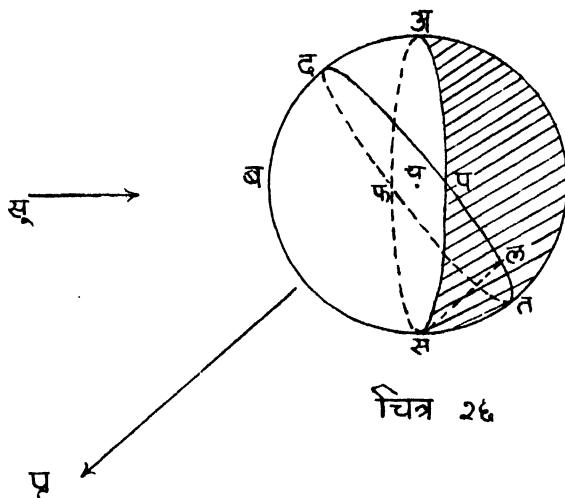
$$= \frac{१}{\text{चान्द्रमास}}$$

यदि अयन-चलन का वार्षिक कोणीय मान 'य' है तो प्रतिदिवस का अयन-चलन $\frac{\text{य}}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}}$ है। प्रति दिवस चन्द्रमा की नाक्षत्र गति $\frac{३६०^\circ}{\text{चान्द्र नाक्षत्र भगण काल}}$ है। यदि किसी क्षण-विशेष पर चन्द्रमा संपात विन्दु पर है तो प्रति दिवस वह उससे $\frac{३६०^\circ}{\text{नाक्षत्र भगण काल}}$ पूरब को हटेगा। इसके विपरीत संपात विन्दु प्रति दिवस $\frac{\text{य}}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}}$ पश्चिम को हटेगा। अतः प्रति दिवस चन्द्रमा तथा संपात विन्दु में कोणीयान्तर $\frac{३६०^\circ}{\text{नाक्षत्र भगण काल}} + \frac{\text{य}}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}}$ का होगा। जितने समय के अनन्तर यह अन्तर ३६० का हो जाय वही चन्द्रमा का सायन भगण काल है। अतः

$$\frac{३६०^\circ}{\text{नाक्षत्र भगण काल}} + \frac{\text{य}}{\text{नाक्षत्र सौर वर्ष}} = \frac{३६०^\circ}{\text{सायन भगण काल}}$$

चन्द्रमा के आकार के बढ़ने-घटने को शृँगोन्नति कहते हैं। चित्र २६ में 'सू' सूर्य की दिशा तथा 'च' चन्द्रमा का केन्द्र है। चन्द्रमा के धरातल के अर्द्धभाग 'अ ब स' सूर्य द्वारा प्रकाशित है। पृथ्वी से चन्द्रमा का 'द ब त' अर्द्धभाग ही दिखाई दे सकता है। इसमें 'द ब स' भाग प्रकाशित है। परम वृत्त (Great Circle) 'अ-स' तथा परम वृत्त 'द-त' एक

चित्र २६

दूसरे को प तथा फ विन्दुओं पर छेदते हैं। चन्द्रमा के गोल धरातल का अंश 'प द फ स प' शृँग अथवा मत्स्य (Lune) कहलाता है। पूर्णिमा को कोणीयान्तर 'सू च पृ' शून्य हो जाता है तथा शृँग पूरा गोलार्ध होने के कारण पृथ्वी से पूर्ण वृत्त के रूप में दिखाई देता है। अन्य अवस्थाओं में शृँग का कोण द च स सर्वथा कोण १८०°—'सू च पृ' के समान रहता है। यदि विन्दु स से चन्द्रमा के व्यास द च त पर लंब स ल खींचा जाय तो चन्द्रमा के शृँग के मध्यभाग की चौड़ाई पृथ्वी से द-ल के बराबर दिखाई देगी। 'द-ल' का मान है र − र × कोज्या द च स = र [१ + कोज्या सू च पृ] जहाँ र चन्द्रमा के बिंब की त्रिज्या है।
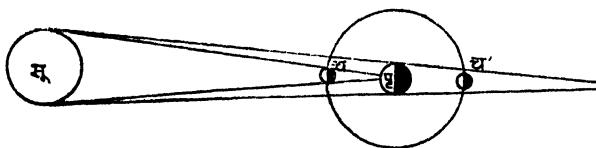
यदि नित्य प्रति चन्द्रबिंब का आकार मापा जाय तथा उससे चन्द्रमा की दूरी में जो अंतर होता रहता है उसका अनुमान किया जाय तो यह पता चलता है कि चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी सदा परिवर्त्तित होती रहती है। चन्द्रमा का मार्ग पृथ्वी को प्रतिस्वर मान कर एक दीर्घ वृत्त की परिधि पर है। इस कारण चन्द्रमा के नाक्षत्र भगण काल तथा चान्द्र मास में सदा परिवर्तन होता रहता है; पर इनका सम मान पहले लिखे के समान होता है। चन्द्रमा की कक्षा के धरातल तथा पृथ्वी की कक्षा के धरातल में '५° ८' ४३" का अन्तर है। चन्द्रमा का भ्रमण-कक्ष पृथ्वी के भ्रमण-कक्ष (अर्थात् क्रांति वृत्त) के धरातल को जिन दो विन्दुओं में छेदता है, वह क्रमशः राहु (आरोहीपात) तथा केतु (अवरोही पात) के नाम से प्रसिद्ध है। राहु तथा केतु की सूर्य के क्रांति-वृत्त पर वक्र गति होती रहती है, जिसका सम मान प्रति दिवस ३' १०." ६४ है। चन्द्रमा तथा पृथ्वी के धरातल का कोणीयांतर भी परिवर्त्तनशील है। यह लगभग १७३ दिनों में अपने पूर्ववत् स्थान

पर आ जाता है तथा इसमें १८′ तक का अन्तर होता है। इस परिवर्तन से राहु तथा केतु की क्रांतिवृत्त पर गति भी परिवर्त्तित होती रहती है। चन्द्रमा पृथ्वी के चतुर्दिक् भ्रमण में अपनी ध्रुवा के चारो ओर नाचता रहता है तथा दोनों प्रकार की गतियों का परिक्रमण काल एक होने के कारण पृथ्वी से सदा चन्द्रमा का एक ही अर्द्धांश दिखाई दे सकता है। जैसे-जैसे इस अर्द्धांश का न्यूनतर अंश सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे-वैसे चन्द्रमा के विम्ब का आकार भी छोटा होता जाता है।

मंगल, वृहस्पति, शनि, इन्द्र तथा वरुण के साथ भी उपग्रह हैं। मंगल के दो, वृहस्पति के नव, शनि के नव, इन्द्र के चार तथा वरुण के एक चन्द्रमा अबतक मिल सके हैं। इन्हें उपग्रह कहना सर्वथा उचित नहीं है, क्योंकि वास्तव में ग्रह-उपग्रह दोनों ही अपने सम्मिलित गुरुत्व केन्द्र के चतुर्दिक् भ्रमण करते हैं तथा सामूहिक रूप से सूर्य के चतुर्दिक् भ्रमण करते हैं।

चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण आकाश के चमत्कारिक दृश्यों में सर्व प्रमुख हैं। इनका अध्ययन तथा इनका समय पहले से जान लेना अनेक देशों में ज्योतिषियों का प्रधान कार्य था तथा प्राचीन समय से ही लोगों ने इसमें सफलता पाई। वास्तव में सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का समय पहले से जान लेना उस समय के ज्योतिषियों के लिए कड़ी कसौटी थी तथा इसमें सफलता पाने से ही उस समय के सिद्धांत इतने अच्छे समझे गये कि मध्यकालीन समय तक किसीने उनके परिवर्तन की चर्चा न की।

चित्र २७ में अमावस्या तथा पूर्णिमा को चन्द्रमा के स्थान च तथा च′ दिखाये गये हैं।

चित्र २७

यदि च अथवा च′ चन्द्रमा की कक्षा के आरोही अथवा अवरोही पातों में से किसी एक पर है या उसके समीप है तो 'सू च पृ' अथवा 'सू पृ च' एक ऋजु रेखा होगी। च अवस्था में चन्द्रमा की छाया पृथ्वी तक तभी पहुँचेगी जब च पृथ्वी के समीप हो। पृथ्वी के थोड़े भाग से ही सूर्यग्रहण दिखाई देगा। छाया के बाहर कुछ दूरी तक आंशिक सूर्यग्रहण दिखाई देगा। यदि छाया की शूचि पृथ्वी तक न पहुँच पाये तो पृथ्वी के किसी भी अंश से चन्द्रमा का विम्ब सूर्य के विम्ब के सर्वथा अन्तर्गत ही दिखाई देगा। इसे वलय ग्रहण (Annular Eclipse) कहते हैं।

च′ अवस्था में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रविष्ट होकर अंधकारमय हो जाता है। पृथ्वी का आकार बड़ा होने के कारण यह छाया भी मोटी होती है। चन्द्रग्रहण यदि होता है तो समस्त पृथ्वी से दिखाई देता है।

चन्द्रमा के बिम्ब का अर्धव्यास अधिक से अधिक १७′ का होता है तथा चन्द्रमा की कक्षा पर पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४७′ तक का होता है। दोनों का योग ६४′ है। जब चन्द्रमा पात-विन्दु से १२½° दूर होता है तब उसका शर ६४′ का होता है। अतः

चन्द्रग्रहण के लिए यह आवश्यक है कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा संपात विन्दु से १२½° से अधिक दूर न हो। पृथ्वी की छाया तथा चन्द्र-विम्ब के अर्धव्यास के अतिन्यून मान भी क्रमशः ३८′ तथा १४′ हैं तथा ५२′ शर के लिए चन्द्रमा को पात से ६° दूर होना चाहिए। अतः यदि पूर्णिमा को चन्द्रमा के राशि-भोग तथा राहु अथवा केतु के राशि-भोग में ६° अंश या इससे कम का अन्तर कम हो तो चन्द्रग्रहण होना अनिवार्य है। इसी भाँति सूर्यग्रहण के लिए यह आवश्यक है कि अमावस्या को सूर्य के राशि-भोग तथा राहु अथवा केतु के राशिभोग में १८½° या इससे कम का अंतर हो तथा यदि यह अन्तर १३½° का हो जाय तो सूर्यग्रहण होना अनिवार्य है। जैसा पहले बताया जा चुका है, क्रान्ति वृत्त पर राहु तथा केतु की वक्र दैनिक गति ३′ १०″·६४ है। सूर्य की माध्यमिक गति ५९′ ८″·३३ है। अतः राहु अथवा केतु से सूर्य की दूरी नित्य ६२′ १९″ अधिक होती जाती है। अमावस्या से पूर्णिमा तक अर्थात् १४¾ दिवस में यह दूरी १५½° बढ़ जायगी। अतः यदि किसी अमावस्या को सूर्य राहु अथवा केतु के साथ है तो उसके पूर्व तथा पश्चात् आनेवाली पूर्णिमा को चन्द्रमा पात-विंदु से १५°½ दूर रहेगा। अतः जब सूर्य अमावस्या को राहु अथवा केतु के समीपवर्त्ती हो तो एक सूर्यग्रहण भर होकर रह जायगा। इसके विपरीत जब सूर्य पूर्णिमा को राहु अथवा केतु के समीपवर्त्ती हो तो एक चन्द्रग्रहण तथा उसके पूर्व तथा पश्चात् की अमावस्याओं को सूर्यग्रहण संभव है, क्योंकि सूर्य की राहु अथवा केतु से दूरी १८½° से कम होगी।

यदि सूर्य अमावस्या अथवा पूर्णिमा से दो दिवस पूर्व या पश्चात् राहु अथवा केतु के समीपवर्त्ती हो तो भी ऊपर लिखी अवस्था होगी। ऐसा सहज ही सिद्ध किया जा सकता है।

सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण से अधिक होते हैं; फिर भी किसी एक स्थान से अधिकांश सूर्यग्रहण दिखाई नहीं देते तथा चन्द्रग्रहणों की संख्या अधिक दीख पड़ती है।

सूर्यग्रहण में चन्द्रमा बादल के टुकड़े की भाँति पश्चिम से पूर्व जाता हुआ पहले सूर्य के पश्चिम अंग को ढँकता है। अतः सूर्यग्रहण सूर्य के पश्चिम भाग से आरंभ होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा पश्चिम से पूर्व जाता हुआ पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है। अतः चन्द्रग्रहण चन्द्रमा के पूर्व अंग से आरंभ होता है।

चन्द्रमा की भाँति अन्य ग्रहों के उपग्रहों का ग्रहण होता है। बृहस्पति के ग्रहण के अध्ययन से ही रोमर (Roemer) ने प्रकाश की गति को नापा। उपग्रहों की गति का न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की पुष्टि तथा ग्रहनक्षत्रों की परस्पर दूरी की माप-जोख में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

तेरहवाँ अध्याय

प्राचीन तथा अर्वाचीन यंत्र

आकाशीय वस्तुओं की माप-जोख में प्रधानतः समय तथा दिशा का ठीक-ठीक ज्ञान आवश्यक है। आकाशीय वस्तुओं की दिशा में दर्शक के स्थानान्तर से जो भेद होता है, उससे ही उनकी दूरी का अनुमान किया गया है।
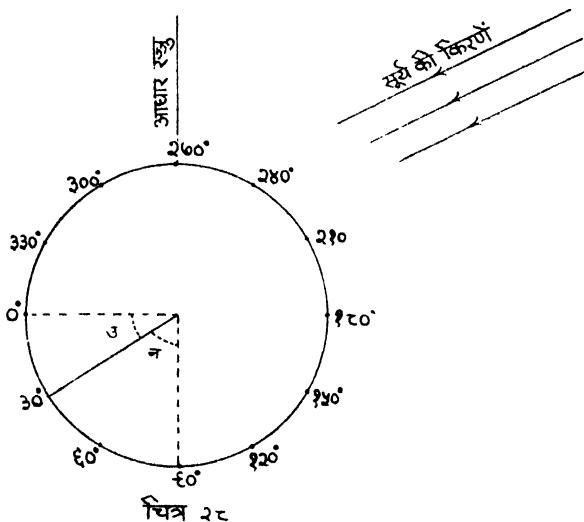
समय की माप के हेतु आधुनिक घड़ियों का व्यवहार करनेवाले यह भूल जाते हैं कि व्यावहारिक घड़ियाँ वेधशालाओं की घड़ियों से मिलाई जाती हैं तथा वेधशालाओं में घड़ियों का काल-मान ग्रहनक्षत्रों की गति से ही निकाला जाता है। प्राचीन ज्योतिषियों की घटी किसी छोटे जलपात्र के नीचे छेद करके बनती थी। इसे किसी बड़े जल-पात्र में जल के ऊपर तैरने को छोड़ दिया जाता था। घटी का छिद्र ऐसा बनाया जाता था कि अहोरात्र में यह ६० बार पानी में डूब जाय।

आधुनिक घड़ियों से पाठक परिचित होंगे ही। इनके बनाने में चेष्टा यही रहती है कि इनकी गति तापमान इत्यादि के अन्तर से बदलने न पाये। फिर भी इन घड़ियों की गति को आरंभ में नक्षत्र-ग्रहों की गति से ही शुद्ध किया जाता है। वास्तव में समय की माप के लिए नक्षत्र-ग्रहों की स्थिति तथा उनकी गति की माप-जोख आवश्यक है।

सूर्य अथवा अन्य ग्रह-नक्षत्रों का उन्नतांश अथवा उनकी परस्पर दूरी की माप प्राचीन काल में प्रधानतः चक्र तथा यष्टि यंत्रों से होती थी। दूरवीक्षण यंत्र तथा सूक्ष्मवीक्षण यंत्र के न होने पर भी यह माप-जोख बड़ी सावधानी से की जाती थी। उस समय की माप-जोख के फल तथा आधुनिक यंत्रों से माप-जोख के फल में अंतर बहुत ही कम है। यह उस समय के ज्योतिषियों की कार्यकुशलता का प्रमाण है।

चक्रयंत्र एक चक्राकार धातुखंड अथवा काष्ठखंड होता था। इसके दोनों ओर के धरातल सम तथा एक दूसरे के समानान्तर होते थे। चक्र की परिधि ३६० अंशों में विभक्त होती थी। चक्रयंत्र अपनी परिधि से लगे हुए रज्जु अथवा शृंखला से लटकाया रहता था।
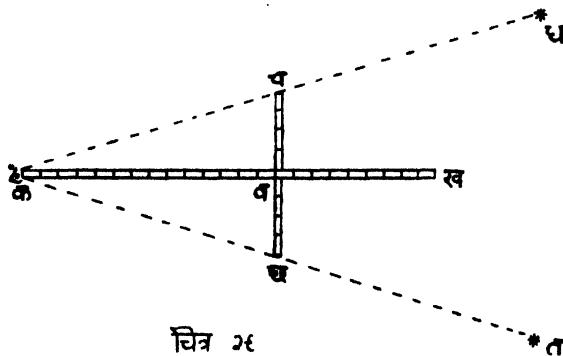
उसके केन्द्र से होकर आर-पार चक्र के धरातल पर लम्ब रेखा के रूप में एक शलाका की बनी चक्र की ध्रुवा होती थी। सूर्य का उन्नतांश (Altitude) अथवा नतांश (Zenith distance) निकालने के हेतु चक्र को उसकी आधार-शृंखला से घुमाकर ऐसे स्थान पर लाया जाता जहाँ सूर्य चक्र के धरातल में आजाय अथवा चक्र की परिधि की छाया चक्र के धरातल पर न गिरे। ऐसे स्थान पर चक्र की ध्रुवा की छाया जिस विंदु पर गिरे, उससे चक्र के निम्न विंदु (अर्थात् आधार से उलटी दिशा में स्थित विंदु) की दूरी सूर्य का नतांश है, तथा उसका पूरक कोण सूर्य का उन्नतांश है। चित्र २८ में यह अवस्था दर्शित है। चक्रयंत्र से चन्द्रमा का उन्नतांश तथा नतांश भी प्रायः इसी प्रकार निकाला जा सकता है।

चित्र २८

चक्रयंत्र से सूर्य का नतांश एवं उन्नतांश की माप
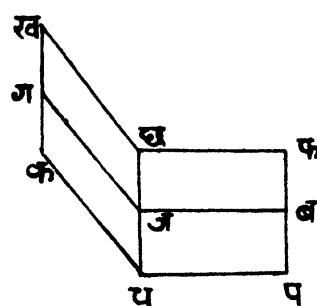
किसी तारा का नतांश अथवा उन्नतांश निकालने के लिए पहले चक्रयंत्र को आधार के चतुर्दिक घुमाकर ऐसे स्थान पर रखना होगा जहाँ से वह तारा चक्र के धरातल में दीख पड़े। फिर दर्शक चक्र के उस विंदु पर कोई चिह्न लगा दे, जिसके तथा चक्र की ध्रुवा की सीध में वह तारा है। किसी तारा का उन्नतांश जहाँ सबसे अधिक हो, वह चक्र की याम्योत्तर अवस्था होगी। इस अवस्था में भिन्न-भिन्न नक्षत्र-ग्रह जिस अवधि के अंतर पर चक्र का धरातल पार करेंगे, वह उनका संचार भेद (Ascensional Difference) होगा।

प्राचीन काल में यष्टि तथा शंकु नामक सीधे डंडों की सहायता से ही भिन्न-भिन्न विधियों से ग्रह-नक्षत्रों का उन्नतांश तथा राशि-चक्र में उनकी स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। यष्टि को सूर्य अथवा तारा की दिशा में रखते थे। शंकु समतल भूमि अर्थात् क्षितिज के धरातल पर लम्ब रूप होता था। शंकु की सहायता से दिशाओं का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने की विधि चौदहवें अध्याय में दी हुई है।

चित्र २९

यष्टियंत्र

यष्टियंत्र में 'क ख' तथा 'च छ' ऐसे दो सीधे डंडों को लेते थे, जिनमें 'च छ' 'क ख' की अपेक्षा कुछ मोटा होता था। 'च छ' के मध्य में ऐसा छिद्र करते थे कि 'क ख' उसमें से होकर ठीक-ठीक निकल जाये तथा वैसी अवस्था में 'क ख' तथा 'च छ' एक दूसरे पर लम्ब हों। 'क ख' तथा 'च छ' दोनों ही समान भागों में चिह्नित कर दिये जाते थे। 'क ख' को 'च छ' से होकर तबतक हटाया जाता था जबतक 'क' से देखने पर 'च छ' के दोनों छोर क्रमशः ध्रुवतारा 'ध' तथा इष्टतारा 'त' की सीध में न दिखाई पड़े। 'क ख' तथा 'च छ' के सम्पात विंदु 'व' से 'क' की दूरी तथा 'च छ' की लम्बाई जानकर कोण 'च क छ' का ज्ञान हो सकता है। ९०° अर्थात् एक समकोण में से इस कोण को घटाने से इष्टतारा 'त' का अपक्रम अर्थात् खगोलिक विषुव से दूरी का ज्ञान हो सकता है।

चित्र ३०
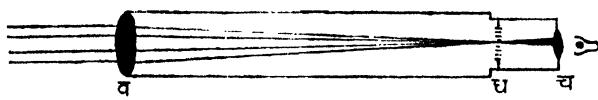
शंकु-समूह

प्राचीन ज्योतिषियों का शङ्कु समतल भूमि पर लम्ब रूप में स्थित काष्ठ अथवा लौहदंड मात्र था। यदि सूर्य अथवा ध्रुव तारा से दिशाओं को शुद्ध करके 'क ख' 'च छ' तथा 'प फ' ये तीन शंकु इस प्रकार लगाये जायँ कि 'क ख' 'च छ' के सीधे उत्तर हो तथा 'प फ' 'च छ' के सीधे पूरब हो तो शङ्कुओं को 'ख छ, छ फ, ग ज, ज ब' सीधे डंडों से

मिला दिया जाय तो 'ग ज छ ख' से याम्योत्तर मंडल का धरातल तथा 'ज ब फ छ' से सम मंडल अर्थात् पूर्वापर मंडल का धरातल निश्चित हो सकता है। यदि दर्शक भूमि पर लेटकर डंडों की सीध में आकाश की ओर देखे तो वह किसी भी तारा के सम मंडल अथवा याम्योत्तर मंडल पार करने के समय का निर्णय कर सकता है। याम्योत्तर मंडल पार करने के समय का निश्चय होने से पूर्वोक्त विधि द्वारा तारा का संचार अथवा भभोग ज्ञात हो सकता है। पाठक अपने मनोरंजन के लिए स्वयं यष्टि तथा शङ्कु यंत्रों की वेधशाला अपने घर में प्रस्तुत कर सकते हैं। यदि दर्शक कुशल हो तो इन्हीं यंत्रों से ऐसे वेध हो सकते हैं, जिनसे कई वर्ष पर्यंत ग्रहों का स्थान निश्चित किया जा सके।

यष्टि यंत्र से ताराओं की दूरी परस्पर माप कर ताराओं की अपेक्षा चन्द्रमा का स्थान तथा यष्टि एवं शंकु यंत्र की सहायता से चन्द्रमा से सूर्य की दूरी मापकर ताराओं के बीच सूर्य के स्थान का निर्णय हो सकता है। इसी यष्टि यंत्र में थोड़ा परिवर्त्तन करके इससे सूर्य अथवा चन्द्रमा के बिम्ब का व्यास मापा जा सकता है।

आधुनिक युग में ज्योतिष की असीम उन्नति यंत्रों के सहारे ही हुई है। आधुनिक यंत्रों का आवश्यक अंग किसी-न-किसी प्रकार का दूरवीक्षण यंत्र होता है। वस्तुतः दूरवीक्षण यंत्र में एक नली के दो किनारों पर दो उन्नत ताल (Convex Lens) लगे रहते हैं। जिन्हें क्रमशः वस्तुताल (Object glass) तथा चक्षुताल (Eye piece) कहते हैं। जहाँ वस्तु का प्रतिरूप बनता है वहाँ वस्तु का आकार अथवा उसके स्थान-परिवर्तन की माप के लिए सूक्ष्म तार अथवा मकड़े की जाल के धागे लगे होते हैं। चित्र ३१ में दूरवीक्षण यंत्र के आवश्यक अङ्ग दिखाये गये हैं। दूरवीक्षण यन्त्र को ही भिन्न-भिन्न प्रकार के चक्र पर आरूढ़ करके त्रिकोणमापकयन्त्र (Theodolite), पारगमन यंत्र (Transit Instrument) तथा वैषुवत यंत्र (Equatorial) बनाये जाते हैं।
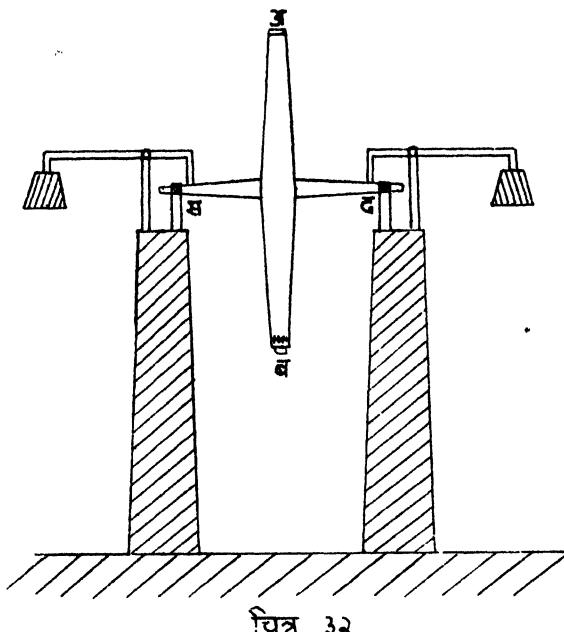
चित्र ३१

दूरवीक्षण यंत्र

पारगमन यंत्र किसी भी वेधशाला का अत्यावश्यक अंग है। इस यंत्र से किसी आकाशीय वस्तु के याम्योत्तर वृत पार करने का समय ठीक-ठीक निकाला जाता है। दूरवीक्षण यंत्र के गुरुत्व-केन्द्र (Centre of gravity) के स्थान पर उसे धातु की बनी एक नली के बीच जोड़ देते हैं। इस नली के दोनों छोर शूच्याकार होते हैं तथा उस नली को सीधे पूर्वापर (East-west) दिशा में दो फलकों पर रख दिया जाता है।

ये फलक दो स्थूल स्तम्भों पर जड़े होते हैं। फलकों पर यंत्र का घूमना सहज हो, इस हेतु उसके गुरुत्व का प्रतिकार नली के दोनों छोर से लगे हस्तक तथा भारद्वारा किया रहता है। चित्र-संख्या ३२ में पारगमन यंत्र के आवश्यक अंग दिखाये गये हैं।

चित्र ३२

पारगमनयंत्र

पारगमन यंत्र की शुद्ध अवस्था तब होती है जब (१) इसके दूरवीक्षण यंत्र की केन्द्रीय रेखा 'अ ब' इसकी भ्रमण-ध्रुवा 'स द' पर लम्ब हो। (२) ध्रुवा 'स द' क्षितिज धरातल के समानान्तर हो। (३) ध्रुवा 'स द' ठीक-ठीक पूरव-पश्चिम दिशा में हो। पहली दशा पारगमन यंत्र के भ्रमण-कक्ष को खगोल का परम वृत बना देती है। दूसरी दशा इस मंडल को शिरोमंडल बनाती है। तीसरी दशा में यह मंडल दक्षिणोत्तर मंडल हो जायगा।

पहली दशा के लिए यंत्र के चक्षुताल का स्थान तब तक बदलते रहता है जब तक किसी भी दूरस्थ वस्तु का स्थान यंत्र के दाहिने तथा बायें अंग को उलटफेर करने से पूर्ववत् ही रह जाय। दूसरी दशा समतल मापक यंत्र (Spirit Level) से शुद्ध की जाती है। इस यंत्र (चित्र ३३) में काँच की धन्वाकार नली में किसी प्रकार का आसव भरकर उसमें हवा का एक बुलबुला रहने दिया जाता है। काँच पर समान अन्तर पर चिह्न बने होते हैं। यदि किसी धरातल पर किसी भी दिशा में यंत्र को रखा जाय, पर उससे बुलबुले के स्थान में अन्तर न आये तो धरातल 'सम' है। इस यंत्र को पारगमन यंत्र 'स द' ध्रुवा पर

दूरवीक्षण यंत्र के आरपार रखते हैं तथा बुलबुले के स्थान को देख लेते हैं। फिर समतल मापक को घुमा कर दाहिने-बायें भागों में उलट-फेर करके पुनः बुलबुले के स्थान को देखते

चित्र 33
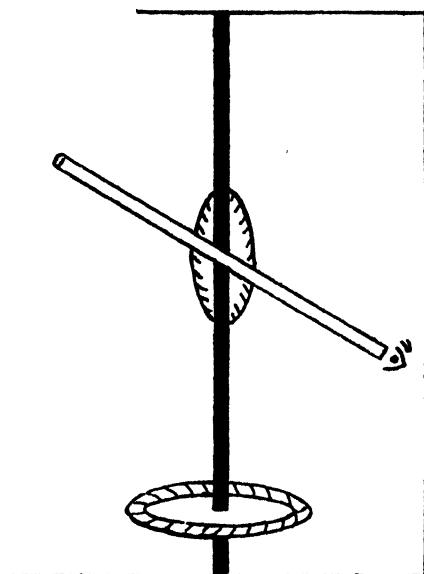
समतल मापक यंत्र

हैं। पारगमन यंत्र में ध्रुवा 'सद' के स्थान में परिवर्त्तन की व्यवस्था रहती है तथा यह परिवर्त्तन तबतक किया जाता है जबतक समतल मापक यंत्र से ध्रुवा 'सद' शुद्ध समधरातल पर न आ जाय।

'सद' को शुद्ध पूर्व-पश्चिम दिशा में करने के लिए पारगमन यंत्र के दूरवीक्षक को उत्तर दिशा में खगोलिक ध्रुव के समीप किसी नक्षत्र की ओर किया जाय, जो उस अक्षांश में कभी अस्त न होता हो। ऐसे नक्षत्र का उपरिगमन, अधोगमन तथा पुनः उपरिगमन का समय पारगमन यंत्र द्वारा देखा जाय। यदि उपरिगमन से अधोगमन का समय अधोगमन से उपरिगमन के समय के समान है तो पारगमन यंत्र की तृतीय दशा शुद्ध है। अन्यथा यंत्र में दिये हुए साधनों द्वारा इस दशा को शुद्ध करना होगा।

ऊपर लिखे प्रकार शुद्ध करने पर भी यंत्र में कुछ अशुद्धि रह जाती है, जिसे ज्योतिषीय पर्यवेक्षण द्वारा ही शुद्ध किया जाता है। इसका विस्तृत विवरण पुस्तक के लक्ष्य से बाहर है।

'भित्तिचक्र' (Mural Circle) बहुधा पारगमन यंत्र के साथ-साथ लगा रहता है। इसमें दूरवीक्षण यंत्र दक्षिणोत्तर भित्ति के पार्श्व में उसके समानान्तर भ्रमण करता है तथा भित्ति पर किये गये चिह्नों द्वारा पारगमन काल में आकाशीय वस्तुओं का नतांश (Zenith Distance) मापा जा सकता है। क्षैतिज यंत्र (Altazimuth) (चित्र ३४) में दूरवीक्षक की ध्रुवा 'सद' स्वयं क्षितिज की धरातल में भ्रमण करती है तथा दक्षिणोत्तर स्थिति से कोणीयान्तर क्षितिज की धरातल में स्थित एक चक्र द्वारा प्राप्त होता है। दूरवीक्षक के दोनों पार्श्व में चिह्नित चक्र रहते हैं, जिससे पर्यवेक्षित वस्तु के उन्नतांश अथवा नतांश प्राप्त हो सकते हैं।
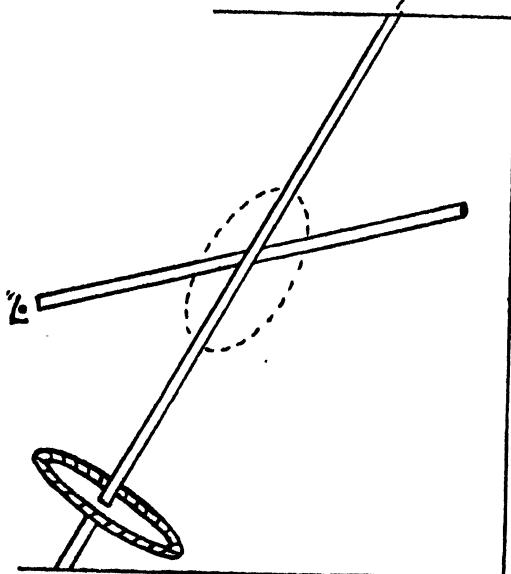
क्षैतिज चित्र

चित्र ३४

वैषुवत यंत्र (चित्र ३५) में ध्रुवा सद का भ्रमण धरातल क्षितिज में न होकर खगोलिक विषुव के धरातल में होता है।
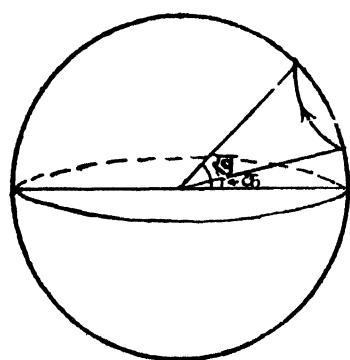
चित्र ३५

वैषुव यंत्र
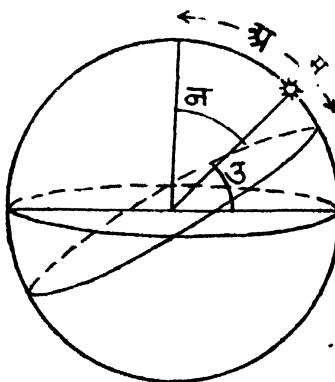
चौदहवाँ अध्याय

त्रिप्रश्न अर्थात् दिग्देश काल का निरूपण

किसी भी स्थान के लिए सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त ऋतुपरिवर्तन, आदि का समय जानने के निमित्त उस स्थान का अक्षांश जान लेना आवश्यक है। ध्रुवतारा को देखकर अक्षांश का लगभग ठीक अनुमान हो सकता है। वास्तव में खगोलिक ध्रुव तथाकथित ध्रुवतारा से कुछ हटकर है। अक्षांश का शुद्धमान किसी ध्रुव समीपक नक्षत्र के उपरिगमन तथा अधोगमन काल के उन्नतांशों के योग का आधा होता है। दिन में यदि सूर्य का अपक्रम ज्ञात हो तो सूर्य के उपरिगमन काल के उन्नतांश (अथवा नतांश) से भी स्थानविशेष के अक्षांश का ज्ञान हो सकता है।
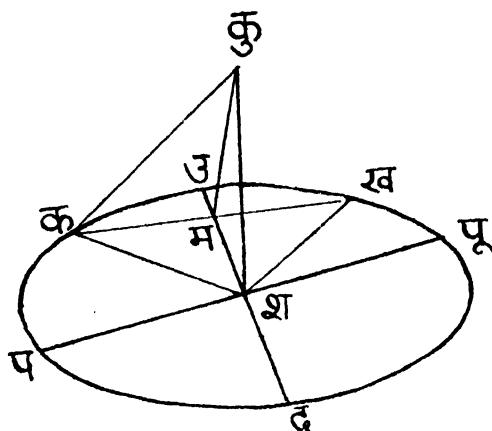
चित्र ३६ चित्र ३७

चित्र ३६ में ध्रुव समीप क नक्षत्र के उपरिगमन तथा अधोगमन काल के उन्नतांश ∠ ख तथा ∠ क है, तो स्थान विशेष का अक्षांश $\frac{\angle \text{क} + \angle \text{ख}}{२}$ हुआ। इसी भाँति यदि सूर्य के उन्नतांश तथा नतांश क्रमशः ∠ उ तथा ∠ न है, अपक्रम (Declination) ∠ म है तथा स्थान विशेष का अक्षांश अ है एवं उत्तर अपक्रम तथा अक्षांश को + तथा दक्षिण अपक्रम तथा अक्षांश को — माना जाय, तो ∠ अ = ∠ न + ∠ म

∠ न + ∠ उ = ९०° (चि० ३७)
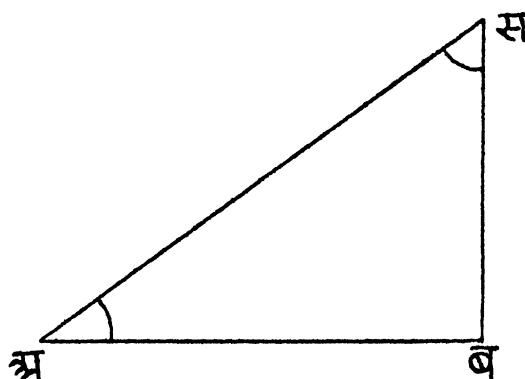
'सूर्य सिद्धान्त' में स्थान विशेष का अक्षांश निकालने की निम्नलिखित विधि दी हुई है। जल द्वारा संशुद्ध सम धरातल रूप प्रस्तर खंड पर अथवा चूना इत्यादि से ठोस

बनाई हुई समतल भूमि पर कर्कट (Compass) से एक वृत्त खींचें। फिर वृत्त के केन्द्र पर बारह समान भागों में विभक्त एक शंकु वृत्त के धरातल पर लम्ब रूप से रखें। वृत्त के धरातल को जलराशि के ऊपरी धरातल की भाँति क्षितिज के धरातल में लायें तथा शंकु सीस-रज्जु (Plarels-line) की सीध में करें। जिन दो विंदुओं पर शंकु की छाया मध्याह्न के पूर्व तथा पश्चात् वृत्त की परिधि को छुए, वे दोनों विंदु एक दूसरे से पूर्व पश्चिम को हैं। दोनों विंदुओं को मिलानेवाली ऋजु रेखा के मध्य से वृत्त के केन्द्र होकर जो लम्ब खींचा जाय वह दक्षिणोत्तर रेखा है तथा वृत्त के केन्द्र से दक्षिणोत्तर रेखा पर जो लम्ब खींचा जाय, वह पूर्व-पश्चिम अथवा पूर्वापर रेखा है। चित्र ३८ में 'शकु' शंकु है तथा 'शक'

चित्र ३८

'शख' शंकु की वृत्त-स्पर्शिणी छायाएँ। म विंदु ऋजु रेखा क ख के मध्य में है। कोण क शकु = मशक = कमश = समकोण। अतः कुक² = शकु² + शक²; शक² = शम² + मक²

चित्र ३९

सूर्य के वैषुवत स्थान में अर्थात् जब दिन और रात बराबर हों (सूर्य के खगोलिक विषुवत्

पर होने से) यदि शंकु का मान बारह हो तो दिनार्ध (Midday) की छाया के माप को उस स्थान की विषुवत्प्रभा अथवा पलभा कहते हैं।

अ ब स समकोण त्रिभुज में कोण ब समकोण है तो कोण स की अपेक्षा 'अब' ऋजु रेखा को भुजा, 'ब-स' को कोटि तथा 'अ-स' को कर्ण कहते हैं।

अनुपात $\frac{अब}{अस}$ कोण स की ज्या (Sine) है।

अनुपात $\frac{बस}{अस}$ कोण स की कोज्या (Cosine) है।
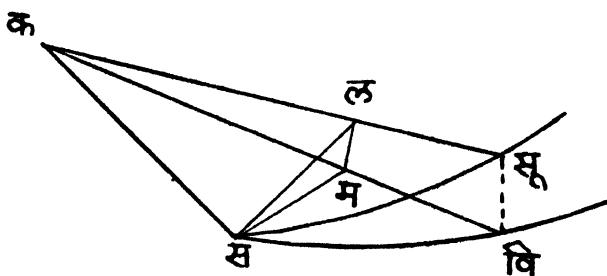
अनुपात $\frac{अब}{बस}$ कोण स की स्पर्शज्या (Tangent) है।

सूर्य के वैषुव स्थान की पलभा में कर्ण से भाग देने से स्थानविशेष के अक्षांश की ज्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार शंकु में वैषुवत दिनार्ध के कर्ण को भाग देने से अक्षांश की कोज्या प्राप्त होती है। सूर्य के अन्य स्थानों में दिनार्ध की छाया में उसके कर्ण से भाग दें, तो सूर्य के नतांश (Zenith Distance) की ज्या (Sine) प्राप्त होगी। सूर्य का अपक्रम ज्ञात हो तो वैषुवत दिनार्ध के नतांश में से अपक्रम न्यून करने से स्थानविशेष का अक्षांश प्राप्त हो सकता है। यदि सूर्य का अपक्रम ज्ञात न हो तो पहले उस स्थान का अक्षांश जानकर फिर इस रीति से सूर्य का अपक्रम ज्ञात हो सकता है। सूर्य का अपक्रम प्राप्त करने की आधुनिक रीति भित्ति-चक्र द्वारा है जिससे खगोलिक ध्रुव तथा सूर्य का स्थान जान कर दोनों का कोणीयांतर तथा उससे फिर खगोलिक विषुव से सूर्य का अपक्रम प्राप्त हो सकता है।

आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही विधियों में सूर्य का वैषुव स्थान अर्थात् वसंत तथा शरत्-संपात के ठीक-ठीक समय अथवा उस समय खगोल में सूर्य की स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। इस अवस्था के जानने से ही कालविशेष में सूर्य का अपक्रम तथा भिन्न-अक्षांशों में दिनरात का मान ज्ञात हो सकता है। सूर्य सिद्धांत में सांपातिक विन्दु की स्थिति निश्चित करने की निम्नलिखित विधि दी हुई है। उपर्युक्त विधि से समयविशेष पर सूर्य का अपक्रम प्राप्त करने के लिए इसकी ज्या को सूर्य के परमापक्रम अर्थात् विषुव एवं क्रांति वृत के परस्पर कोणीयांतर की ज्या से भाग देना होगा। भागफल सूर्य के भुक्तांश अर्थात् वसंत-संपात से कोणीयांतर की ज्या के समान होगा। (सूर्य सिद्धान्त ३/१८)

चित्र ४० में यदि क दर्शक का स्थान है स संपात विन्दु है तथा स-सू एवं स-वि क्रमशः क्रान्ति वृत्त एवं विषुववृत के अंश हैं तथा समयविशेष पर सूर्य का स्थान सू है तो यदि स ल ऋजु रेखा क स ऋजु रेखा पर लम्ब हो तथा ल म विषुववृत के धरातल पर लम्ब हो, तो कोण ल म क

तथा लमस दोनों ही समकोण होंगे। कोण ल स म क्रान्तिवृत्त तथा विषुववृत्त के धरातल

चित्र ४०

का कोणीयांतर है। कोण ल क म सूर्य का तत्कालीन अपक्रम है। स्पष्ट है कि

$$\text{ज्या स क ल} = \frac{\text{स ल}}{\text{क ल}}$$

$$\text{ज्या ल क म} = \frac{\text{ल म}}{\text{क ल}}$$

$$\text{ज्या ल स म} = \frac{\text{ल म}}{\text{स ल}}$$
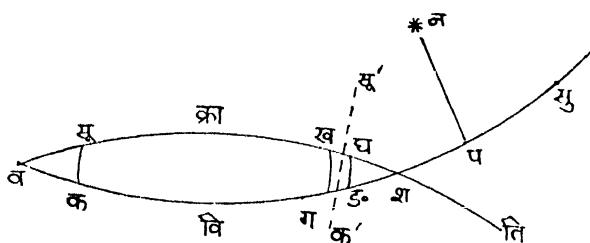
$$\text{अतः ज्या स क ल} = \frac{\frac{१}{\text{कल}}}{\frac{१}{\text{सल}}} = \frac{\text{लम} / \text{कल}}{\text{लम} / \text{सल}}$$

$$= \frac{\text{ज्या ल क म}}{\text{ज्या ल स म}}$$

संपात-विन्दुओं के स्थान को निश्चित करने की अनेक रीतियाँ अभी प्रचलित हैं। संपात-विंदु में सूर्य किस समय पहुँचता है, इसका निश्चय तो संपात-विन्दु के समीप समय-समय पर सूर्य के अपक्रम को मापते रहने से किया जा सकता है। यदि नित्य मध्याह्न (अर्थात् दिनार्ध) के समय सूर्य का अपक्रम मापा जाय तो एक समय ऐसा आयगा कि एक दिन के अंतर पर यह अपक्रम उत्तर से दक्षिण अथवा दक्षिण से उत्तर हो जायगा। वसंत-संपात के समीप संपात-विन्दु के पहले अपक्रम दक्षिण को होगा। यदि पहले दिनार्ध का अपक्रम $प^\circ$ दक्षिण है तथा दूसरे दिनार्ध का $फ^\circ$ उत्तर, तो २४ घंटों में अपक्रम का अन्तर (प+फ) हुआ। अपक्रम में $प^\circ$ का अन्तर होने में $\frac{प}{प+फ} \times २४$ घंटे लगेंगे। पहले दिनार्ध के इतने ही समय पश्चात् शून्य अपक्रम होगा अर्थात् सूर्य वसंत-संपात में रहेगा।

इसी भाँति सूर्य का उत्तर अथवा दक्षिण दिशा में जो परमापक्रम होगा, वही क्रांतिवृत्त एवं विषुववृत्त का कोणीयांतर है। परमापक्रम की अवस्था में बहुत काल तक सूर्य का अपक्रम एक समान रहता है, अतएव इसे मापना सहज है। आधुनिक विधियों में फ्लामस्टीड की वसंत तथा शरत्संपात के निश्चित करने की प्रसिद्ध रीति निम्नलिखित है। चित्र ४१ में वविशसु नाडी-वलय है तथा वक्राशति क्रांति-वलय है। व तथा श क्रमशः वसंत तथा शरत्संपात हैं। न एक नक्षत्र-विशेष है। वसंत-संपात के समीप सू स्थान पर सूर्य का

चित्र ४१

अपक्रम 'सूक' तथा सूर्य एवं मनोनीत नक्षत्र का लंकोदयान्तर (Difference in Right Ascension) अर्थात् चाप कप मापे गये। शरत्संपात के समीप पहुँच कर नित्य सूर्य का अपक्रम (अथवा दिनार्ध में सूर्य का नतांश) मापा जाय तो एक समय ऐसा आयगा, जब एक दिन ख विंदु पर अपक्रम (अथवा दिनार्ध नतांश) 'सूक' से अधिक (या न्यून) तथा दूसरे दिन घ विन्दु पर उससे न्यून (या अधिक) हो जायगा। इन दोनों स्थानों (ख तथा घ) से भी सूर्य तथा मनोनीत नक्षत्र का लंकोदयान्तर निकाला जाय। यदि ये तीनों लंकोदयान्तर क्रमशः त, ल, र है तथा सू ख एवं घ स्थानों में सूर्य के दिनार्ध नतांश च, छ, ज हैं और यदि सू' क' अवस्था में सूर्य का दिनार्ध नतांश सू, क अवस्था के समान हो तो सू' स्थान तथा 'न' नक्षत्र का लंकोदयान्तर 'ह' निम्नलिखित रूप में प्राप्त होगा।

$$\frac{\text{ग क}'}{\text{ग ङ}} = \frac{\text{छ} - \text{च}}{\text{छ} - \text{ज}}$$

$$\text{अतएव ह} = \text{पग} - \text{गक}' = \text{पग} - \text{गङ}\frac{\text{छ} - \text{च}}{\text{छ} - \text{ज}}$$

$$\therefore \text{ह} = \text{ल} - (\text{ल} - \text{र})\frac{\text{छ} - \text{च}}{\text{छ} - \text{ज}}$$

$$\text{वक} = \text{शक}'$$

$$\text{वश} = १८०^\circ$$

$$\text{वश} - २\text{वक} = \text{क क}' = \text{त} - \text{ह}$$

$$\text{अतः } १८०^\circ - २\,\text{वक} = \text{त} - \text{ह}$$

$$\therefore \text{वक} = ९०^\circ - \frac{\text{त} - \text{ह}}{२}$$

$$= ९०° त - \left[\frac{ल - ज (ल - र)\frac{छ - च}{छ - ज}}{२} \right]$$

$$= ९०° - \tfrac{१}{२} (त - ल) - \tfrac{१}{२} (ल - र) \frac{छ - च}{छ - ज}$$

नक्षत्र न का लंकोदय (अथवा संचार—Rt. Ascension)

$$= व प = व क + क प$$

$$= ९०° - \tfrac{१}{२} (त - ल) - \tfrac{१}{२} (ल - र) \frac{छ - च}{छ - ज} + त$$
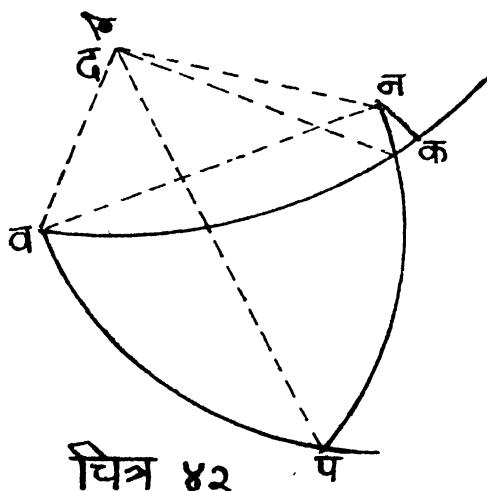
$$= ९०° + \tfrac{१}{२} (त + ल) - \tfrac{१}{२} (ल - र) \frac{छ - च}{छ - ज}$$
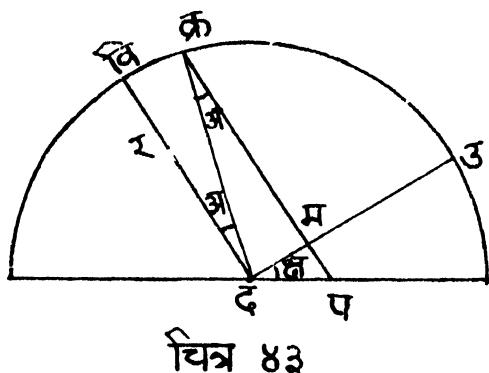
फ्लामस्टीड की विधि की विशेषता यह है कि इसमें सूर्य का अपक्रम नहीं होता, वरन् केवल उसके अन्तर को जान लेना यथेष्ट होता है। अतः स्थानविशेष के अक्षांश को जाने विना ही इस रीति से किसी मनोनीत नक्षत्र का लंकोदय अर्थात् उसके तथा वसंत-संपात के लंकोदयान्तर (Equatorial rising) का पता चल सकता है। यही उस नक्षत्र का संचार है।

भोग एवं विक्षेप से अपक्रम तथा संचार के ज्ञान अथवा अपक्रम एवं संचार से भोग एवं विक्षेप को यामांतर कहते हैं। चित्र ४२ में वक तथा व प क्रान्ति-वलय तथा

चित्र ४२

नाडी-वलय के खंड है। न एक नक्षत्र है। 'व प' नक्षत्र का संचार है, 'न प' उसका अपक्रम, 'न क' उसका विक्षेप तथा 'व क' उसका भोग है। वैश्लेषिक रेखागणित से इनका परस्पर सम्बन्ध निकालकर इनमें से किसी एक युग्म का ज्ञान हो, तो दूसरे युग्म क्या हैं, यह निकाला जा सकता है।

किसी क्षण-विशेष पर जो नक्षत्र अथवा ग्रह दर्शक के दक्षिणोत्तर-मंडल पर रहते हैं, उनके संचार को दक्षिणोत्तर-मंडल का संचार कहते हैं। यदि संचार को असुओं में लिखा जाय तो यही स्वस्तिक अर्थात् शिरोविन्दु का असु है, अतः इसे स्वासु भी कहते हैं। इसी प्रकार दक्षिणोत्तर-मंडल क्रांतिवलय को जिस विंदु में छेदता है, उस विंदु के भोग को मध्यलग्न (Culminating point of Ecliptic सि० शो० २६) कहते हैं। पूर्व क्षितिज तथा पश्चिम क्षितिज पर क्रांतिवलय के जो विन्दु हैं, उनके भोग को क्रमशः उदयलग्न (Ascending point) अथवा केवल लग्न तथा अस्त लग्न (Descending point) कहते हैं। उदयलग्न से ९०° की दूरी पर क्रान्तिवलय का उच्चतम विंदु होता है। उसके भोग को दृक्षेपलग्न (Nonagesimal) कहते हैं। दृक्षेपलग्न के मंडल को दृक्षेप वृत्त कहा है। दृक्षेप विन्दु का नतांश स्वस्तिक का शर है। उसकी ज्या को दृक्षेप कहते हैं। स्थान-विशेष अक्षांश की ज्या को अक्षज्या (Sine of Latitude) कहते हैं। इसी प्रकार अक्षांश की कोटिज्या को अक्षकोज्या अथवा लम्बज्या (Sine of Colatitude) कहते हैं। क्रान्तिवलय पर स्थित किसी तारा के अपक्रम की कोज्या का मान ही उस तारा के अहोरात्र वृत्त (Diurnal Circle) का अर्ध विष्कम्भ (अर्ध व्यास) होगा। अक्षज्या तथा अपक्रम ज्या के गुणनफल को अपक्रम कोज्या तथा अक्षकोज्या के गुणनफल से भाग दें तो लब्धि का मान अर्ध विष्कम्भ तथा तारा-विशेष के अहोरात्र के अन्तर के अर्धांश की ज्या के समान होगा।

चित्र ४३
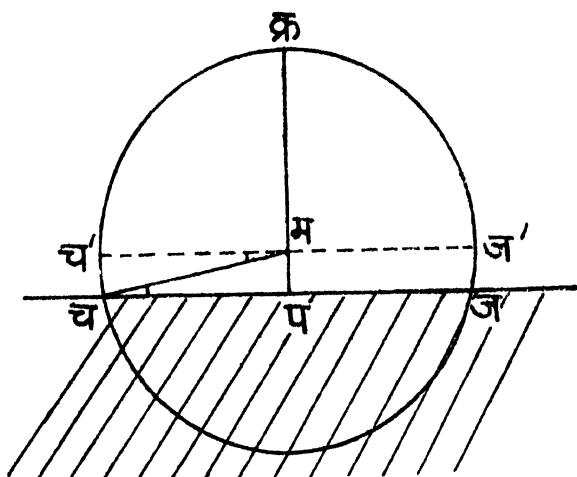
चित्र ४३ में विकउ याम्योत्तर मंडल है। र यदि गोल का अर्धव्यास है, क तारा है, उसका अपक्रम 'अ' है 'क्ष' दर्शक का अक्षांश है, तो अर्ध विष्कम्भ

मक = र × को (अ)

दम = र × ज्या (अ)

$$\frac{\text{मप}}{\text{दम}} = \frac{\text{ज्या (क्ष)}}{\text{को (क्ष)}}$$

क तारा के वृत्त की स्थिति क्षितिज की अपेक्षा इस प्रकार होगी। (देखिए चित्र ४४)

चित्र ४४

यदि तारा के अहोरात्र में अंतर २×सु है, जहाँ २४ घंटों को ३६०° के बराबर मानकर सु का कोणमान निकाला गया हो, तो अहोरात्र के अर्धांश की ज्या

$$\text{ज्या (सु)} = \frac{\text{र} \times \text{ज्या (अ)} \times \text{ज्या (क्ष)}}{\text{र} \times \text{को (अ)} \times \text{को (क्ष)}}$$

यही क्रान्तिवलय स्थित तारा-विशेष के संचार अथवा लंकोदय (ज) तथा देशोदय काल अर्थात् अक्षांश (क्ष) के उदयकाल, के अंतर की ज्यां है। विषुव रेखा पर क्ष = ०, के हैं अतः यह अंतर भी शून्य हो जाता है। इस सूत्र की सहायता से किसी भी स्थान-विशेष के लिए भिन्न-भिन्न राशियों के उदय तथा अस्त का समय निकाला जा सकता है, क्योंकि क्रान्ति वलय स्थित इन राशियों के आरंभ-विंदु का अपक्रम अ तथा स्थान का अक्षांश क्ष ये दोनों ही ज्ञात हो सकते हैं।

प्राचीनकाल में शंकु की छाया तथा जल की घटिका से ही समय की माप की जाती थी। वास्तव में इस रीति से समय का नहीं, पर दिनविशेष को सूर्य का दक्षिणोत्तर वृत्त से कोणीयांतर अथवा समय के दो खंडों के अनुपात का ज्ञान हो सकता था। समय का स्वाभाविक मापदंड 'सावन दिवस' अथवा एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय है; पर इस समय में सूर्य के क्रांतिमार्ग भ्रमण के कारण सदा अंतर हुआ करता है। नाक्षत्र अहोरात्र अर्थात् वसंत-सांपातिक विंदु (अथवा किसी नक्षत्र-विशेष) के एक लंकोदय (अथवा पारगमन)

से दूसरे लंकोदय (अथवा पारगमन) का समय है। सूर्य के खगोल-भ्रमण अर्थात् किसी नक्षत्र विशेष के पास से उसी नक्षत्र तक आ पहुँचने का समय 'नाक्षत्र सौरवर्ष' है। सूर्य के वसंत-संपात से पुनः वसंत-संपात तक आ पहुँचने का समय 'सांपातिक सौरवर्ष' (Tropical year) कहलाता है।

रवि भगणा रव्यब्दा रवि शशियोगा भवन्ति शशिमासा
रवि भूयोगा दिवसा भावर्ताश्चा पिनाक्षत्राः। (आर्यभटीय कालक्रिया-५)

आधुनिक युग में, भिन्न-भिन्न स्थानों में, आवागमन तथा विविध प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषणों में समय की सूक्ष्म माप की आवश्यकता के कारण पूरे संसार के लिए माध्यमिक काल का निर्णय आवश्यक हो गया है, जिससे सभी देशों के लोग अपने-अपने अन्वेषणों तथा कार्यों में ठीक-ठीक सम्बन्ध देख सकें। नाक्षत्रकाल प्रायः अपरिवर्त्तनीय अवश्य है; पर नित्यप्रति के कार्य में इसे नहीं लाया जा सकता, क्योंकि मनुष्यों की दिनचर्या सूर्य के उदय तथा अस्त से सम्बद्ध है तथा नित्य व्यवहार का समय सूर्य से ही सम्बद्ध रहना चाहिए। फिर भी ज्यौतिषीय वेधशालाओं में वसंत-संपात के पारगमन काल को ० घंटा मानकर पुनः वसंत-संपात के पारगमन तक के समय को २४ घंटों में विभक्त करके नाक्षत्र घंटा-मिनट-सेकेंड' में 'नाक्षत्रकाल' दिखानेवाली घड़ियाँ काम में लाई जाती हैं। सूर्य 'के क्रांतिवृत्त के भ्रमण से सौरकाल में अन्तर दो कारणों से होता है। एक तो यदि क्रांतिवृत्त वास्तव में भू केन्द्रीय वृत्त हो, तो भी सूर्य के भोग में समान अंतर होने से असु में समान अंतर नहीं होते, क्योंकि क्रान्तिवृत्त का धरातल खगोलिक विषुव के धरातल में न होकर उससे लगभग २३½° का कोण बनाता है। पुनश्च क्रान्तिवृत्त वास्तव में वृत्त न होकर दीर्घवृत्त है, अतः क्रांतिवृत्त में भी सूर्य की गति सम न होकर विषम होती है।

सौरकाल का आधुनिक मान सूर्य के एक पारगमन से दूसरे पारगमन का समय है, जिसे दो समान खंडों में विभक्त करके फिर प्रत्येक बारह-बारह घंटों में विभक्त करते हैं। माध्यमिक सौरकाल एक कल्पित सूर्य के नाड़ी-वलय में ऐसी समगति से भ्रमण करने से होता है, जिससे वसंत-संपात से पुनः वसंत-संपात तक आने में इस कल्पित सूर्य को भी उतना ही समय लगता है, जो स्पष्ट सूर्य को लगता है। इस मध्य सूर्य (Mean sun) की कल्पना करके किसी एक देशान्तर का समय निश्चित हो जाय, तो प्रति देशांतर अंश (Degree of Longitudes) के लिए 'चार मिनट' (३६०° = २४ घंटा) के अंतर से किसी भी स्थान का माध्यमिक सौरकाल निकाला जा सकता है। व्यवहार में प्रत्येक देश अपना कोई माध्यमिक देशांतर मनोनीत कर लेता है, जिसका माध्यमिक सौरकाल उस देश में प्रचलित रहता है।

यदि किसी स्थान-विशेष का तत्कालीन समय स्थानीय वेधशाला में सूर्य द्वारा निश्चित किया जाय तो उसमें तथा उस स्थान के माध्यमिक सौरकाल में जो अंतर हो उसे 'काल का समीकरण' (Equation of time) कहते हैं।

ज्योतिषीगण एक अन्य प्रकार के समय का भी व्यवहार करते हैं, जिसे सांपातिक काल (Equinoctial Time) कहते हैं। वसंत-संपात से जितना समय व्यतीत हो गया है, उसे

यदि माध्यमिक सौर दिवसों में व्यक्त किया जाय तो फल उस समय का सांपातिक काल होगा। वर्षों की गणना किसी विशेष समय से आरंभ करके होती है। पर प्राचीन भारतीय ज्योतिषी वर्षों की गणना युग-पद्धति द्वारा करते थे। युगों के मान भिन्न-भिन्न ग्रहों तथा उनके पात उच्च आदि विन्दुओं के भगणकाल (Periods of zodiacal Revolution) के लघुत्तम समापवर्त्य हैं। कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि चारों युगों का सम्मिलित काल चतुर्युग है। चतुर्युग के क्रमशः ४/१०, ३/१०, २/१० तथा १/१० भाग चारो युगों के पृथक् मान हैं।

एक चतुर्युग में सूर्य, बुध तथा शुक्र के ४,३२०,००० भगण, चन्द्र के ५७,७५३, ३३६ भगण, पृथ्वी (अथवा नक्षत्रों) के १,५८२,२३७,५०० भगण (यह नाक्षत्र अहोरात्र अथवा पृथ्वी की अपनी ध्रुवा पर घूमने की संख्या है) मंगल के २, २९६, ८२४ भगण, बृहस्पति के ३६४, २२४ भगण तथा शनि के १४६, ५६४ भगण होते हैं। प्रत्येक चतुर्युग के आरंभ में सभी ग्रह रेवती नक्षत्र के योग तारा ς—मीन (ς—Pis Cium) के समभोगी रहते हैं। ब्रह्मा के १ दिन में १४ मनु होते हैं तथा एक मनु में ७२ मयायुग। ६ मनु पूरे बीत गये तथा वर्त्तमान चतुर्युग के तीन पाद (कृत, त्रेता, द्वापर) भी बीत गये। युधिष्ठिर ने गुरुवार तक राज्य किया। शुक्रवार को कलियुग आरंभ हुआ। जुलिअन पंचांग के अनुसार यह ईसवी सन् पूर्व ३१०२ की १७ फरवरी (गुरुवार) की मध्यरात्रि से आरंभ हुआ। इस समय सभी ग्रह रेवती नक्षत्र में अवश्य थे; पर उनके भोग एक नक्षत्र की सीमा के अन्तर्गत एक दूसरे से भिन्न थे। पर ग्रहों के भोग सृष्टि के आरंभ में सर्वथा समान थे। सिद्धान्त-पद्धति के अनुसार सृष्टि के आरंभ से वर्त्तमान चतुर्युग के आरंभ तक १,९५३,७२०,००० नाक्षत्र सौरवर्ष बीते। काशी-विश्वपंचांग इसी पद्धति से बनता है। उसके अनुसार सं० २००६ विक्रमी के आरंभ में सृष्टि के आरंभ से १९५५८८५०५३ नाक्षत्र सौर वर्ष व्यतीत हो चुके थे। सृष्टि के आरंभ से व्यतीत दिनों में सात से भाग देकर जो शेष बचे, उसकी गणना रविवार से आरंभ करके उस दिवस के राज्य का निश्चय होता है। प्राचीन पद्धति के अनुसार शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध अथवा चन्द्र क्रमशः एक दूसरे के नीचे हैं। इन्हें चक्ररूप में लिखकर प्रति चतुर्थ ग्रह सृष्टि के आरंभ से व्यतीत दिनों के स्वामी माने जाते हैं। यथा—

(७)
शनि

(२)	सोम	गुरू	(५)
(४)	बुध	मंगल	(३)
(६)	शुक्र	रवि	(१)

(आर्यभटीय कालक्रिया-१६)

भारतीय सौर वर्ष नाक्षत्र सौरवर्ष है, सांपातिक नहीं। इस कारण भारतीय वर्षारंभ की ऋतु क्रमशः परिवर्त्तित होती जा रही है। अयन-चलन के कारण वसंत-संपात प्रति वर्ष थोड़ा-थोड़ा पूर्व से पश्चिम खिसकता जाता है। इससे १००० वर्ष में लगभग १४

दिनों का अन्तर होता है। जुलियस सीजर तथा उसके पश्चात् पोप ग्रेगरी ने पाश्चात्य सौरवर्ष को शुद्ध सांपातिक या सायन वर्ष के समान कर लिया। ग्रेगरी की पद्धति में ४०० वर्षों में ९७ 'लीपइयर' अर्थात् २९ दिन के फरवरीवाले वर्ष होते हैं। इस पद्धति में १००, २०० तथा ३०० वें वर्षों को छोड़कर अन्य सभी ४ से भाज्य वर्षों में २९ दिन की फरवरी होती है। अतः ग्रेगरी वर्ष का मान

$$\frac{४०० \times ३६५ + ९७}{४००}$$

= ३६५·२४२५ है।
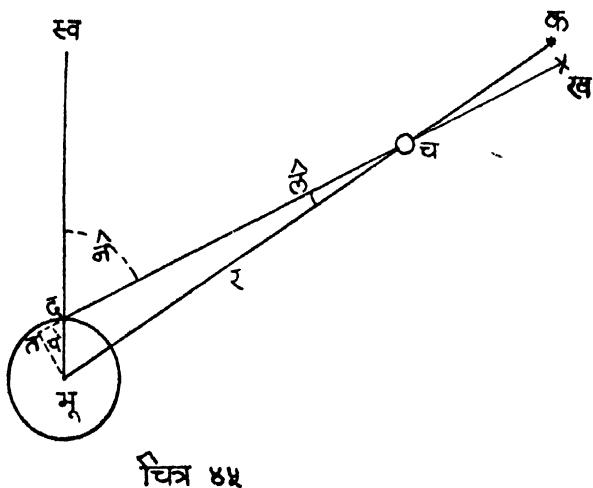
सायन सौर वर्ष का मान ज्योतिषी निउकौम्ब के अनुसार

३६५·२४२·१९८७९—०·००००००६१४ (व–१९००) है, जहाँ 'व' वर्त्तमान ईसवी सन् की संख्या है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

लम्बन (Parallax)

खगोल पर ग्रह-नक्षत्रों के स्थान पृथ्वी के केन्द्र की अपेक्षा दिये होते हैं। वास्तव में दर्शक पृथ्वी को धरातल पर होता है। इससे नक्षत्रों के पारस्परिक स्थान में तो विशेष अंतर नहीं होता; पर ग्रहों तथा विशेष कर चन्द्रमा के स्थान में अंतर हो जाता है। इस अंतर को 'लम्बन' कहते हैं। (आर्यभटीय गोलपाद ३४ सूर्य सिद्धान्त ५/१-२) चित्र ४५ में पृथ्वी का केन्द्र 'भू' है, दर्शक का स्थान 'द' है, 'च' चन्द्र है तथा 'क' 'ख' दो अति दूर

चित्र ४५

तारे हैं। यदि 'भू' से 'च' 'क' की सीध में दिखाई दे तथा 'द' से 'ख' की सीध में दीख पड़े, तो 'क ख' का कोणीयान्तर चन्द्रमा का लंबन हुआ।

इस लम्बन का मान पृथ्वी के आकार तथा चन्द्र की दूरी पर निर्भर करेगा। पृथ्वी का आकार प्राचीन काल में भी दक्षिणोत्तर दिशा में प्रति अक्षांश के अन्तर में कितनी दूरी है, यह माप कर उसे ३६०° से गुना करके प्राप्त किया गया था। यह पृथ्वी की परिधि हुई। इस परिधि से पृथ्वी का व्यास प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' में पृथ्वी का व्यास १६०० योजन दिया है।

आर्यभटीय योजन ८००० पुरुष (पुरुष की ऊँचाई) का होता था तथा पृथ्वी का व्यास आर्यभट्ट के माप से १०५० योजन हुआ। भास्कराचार्य ने पृथ्वी के व्यास को १५८१ $\frac{१}{२४}$ योजन पाया। पर इस योजन की माप आर्यभट्ट के योजन से भिन्न थी। पृथ्वी के धरातल पर स्थान-भेद से लम्बन में भेद होता है, जिससे यदि पृथ्वी का व्यास ज्ञात हो तो चन्द्रमा की दूरी निकाली जा सकती है। पृथ्वी विषुव रेखा पर फूली हुई तथा ध्रुवों पर चपटी हुई है। पृथ्वी का वैषुव अर्धव्यास ३९६३·३४ मील तथा ध्रौवं (Polar) अर्धव्यास ३९४९·९९ मील है। चन्द्रमा का पृथ्वी के केन्द्र से माध्यमिक अंतर पृथ्वी के अर्धव्यास के लगभग ६०·२७ गुना है। सूर्य सिद्धान्त के लेखक ने इस अनुपात को ६४·४६ पाया था।

भूकेन्द्र से तथा दर्शक के स्थान से देखने पर चन्द्रमा के केन्द्रीय विंदु के अपक्रम में जो अंतर होता है, उसे 'नति' (Parallax in Latitude) कहते हैं। इसी प्रकार जो संचार में अतर होता है, उसे स्पष्ट लम्बन अथवा संक्षेप में केवल लम्बन कहते हैं। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त-शिरोमणि के अष्टम अध्याय ११-१२ श्लोक में लम्बन प्राप्त करने की निम्नलिखित विधि दी गई है, जो अबतक व्यवहार में है। चित्र ४५ में यदि चन्द्रमा (अथवा अन्यग्रह) का नतांश न है, लम्बन ल है, पृथ्वी का अर्धव्यास 'प' है तथा ग्रह की भूकेन्द्र से दूरी 'र' है, तो यदि 'च द' रेखा को बढ़ाकर उसपर 'भू त' लम्ब खींचा जाय तो

$$\text{भूत} = \text{प} \times \text{ज्या (न)}$$

$$= \text{र} \times \text{ज्या (ल)}$$

$$\therefore \text{ज्या ल} = \frac{\text{प}}{\text{र}} \times \text{ज्या न}$$

जब ग्रह-विशेष क्षितिज पर दिखाई दे अर्थात्

$$\text{न} = ९०^\circ$$

$$\text{ज्या ल} = \frac{\text{प}}{\text{र}}$$
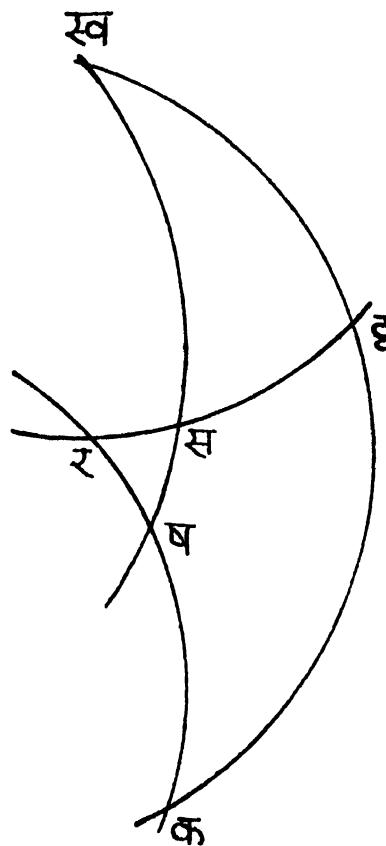
इस लंबन $\frac{\text{प}}{\text{र}}$ को क्षैतिज लम्बन (Horizontal-Parallax) कहते हैं तथा आधुनिक पाश्चात्य ग्रंथों में π (पाई) चिह्न से इसे प्रदर्शित करते हैं। चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रहों

का π इतना न्यून होता है कि ज्या π तथा π के चापमान (Radial Measure) में कोई अन्तर नहीं होता।

क्षैतिज लम्बन की निरपेक्ष माप नहीं हो सकती, क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से किसी ग्रह के उन्नतांश आदि की माप संभव नहीं है। व्यवहार में पृथ्वी के धरातल पर स्थानान्तर से ग्रह-विशेष के भोग तथा शर में स्पष्ट लम्बन तथा नति के भेद के कारण जो अन्तर होता है, उसीको माप कर ग्रहों की दूरी इत्यादि का अनुमान किया जाता है।

चित्र ४६

लम्बन, स्पष्ट लम्बन, नति तथा दर्शक के अक्षांश का संबंध भास्कराचार्य की विधि से इस प्रकार निकाला जाता है—चित्र ४६ में 'स्व' स्वस्तिक (Zenith, शिरोबिंदु) है, र स ट

क्रांति-वलय का एक खंड है, स सूर्य का भूकेन्द्रीय स्थान है, दर्शक को सूर्य ष स्थान पर दिखाई देता है, क क्रांति वलय का ध्रुव (कदम्ब) है, कषर मंडल कदम्ब से क्रान्ति-वलय पर लंब रूप है तो सूर्य की नति = र ष तथा स्पष्ट लंबन = स र है। यदि द्द विंदु द्द क्षेप लग्न है तो 'स्व द्द क' मंडल क्रांति-वलय र स द्द पर लम्ब है।

वैश्लेषिक रेखागणित से स्वस्तिक का शर अथवा दृक्षेपकोण (स्व द्द) जानकर सूर्य (अथवा क्रांति-वृत्त स्थित) किसी भी ग्रह के स्पष्ट लम्बन तथा नति का ज्ञान हो सकता है। स्वस्तिक का शर (अथवा दृक्षेप लग्न का नतांश) दर्शक के अक्षांश से सम्बद्ध है (देखिए अध्याय १४)।

आधुनिक ज्योतिषीय व्यवहार में शर-भोग के स्थान पर अपक्रम (Declination) तथा संचार (Right Ascension) का व्यवहार होता है। लम्बन से इनमें जो अंतर होते हैं उन्हें क्रमशः अपक्रम लम्बन एवं संचार-लम्बन (Parallax in Declination-Parallax in Right Ascension) कहते हैं। 'आधुनिक यंत्र इतने सूक्ष्म हैं कि पृथ्वी के वायुमंडल में प्रकाश की किरणों के भुजायन (Refraction) से भी ग्रह-नक्षत्रों के स्थान में जो अन्तर होता है, उसका भी हिसाब करना आवश्यक हो जाता है। वायुमंडल की घनता शून्य से अधिक है। अतः प्रकाश की तिरछी किरणें पृथ्वी के धरातल तक पहुँचने में नीचे को झुक जाती हैं तथा दृष्टव्य तारा स्वस्तिक के समीप की दिशा में चला जाता है अर्थात् उसका नतांश कम तथा उन्नतांश अधिक हो जाता है। यदि तारा का मापित नतांश 'न' हो तथा भुजायन के कारण पृथ्वी-तल पर पहुँचते-पहुँचते इसमें 'भ' कोण का अन्तर हो गया हो, तो शून्य में तारा का नतांश 'न + भ' होता। भुजायन के भौतिक नियम के अनुसारः—

ज्या (न + भ) = μ ज्या (न)। यहाँ ग्रीक अक्षर μ वायुमंडल के शून्य की अपेक्षा भुजायनमान (Refractive Index) है। व्यवहार में μ तथा १ में अंतर अति न्यून होता है। अतः भ का मान भी अत्यन्त न्यून ही होता है। यदि कोणों को उनके चापमान (Radial Measurement) में लिखा जाय तो

$$\text{ज्या न} + \text{कोज्या (न)} \times \text{भ} = \mu \ \text{ज्या (न)}$$

$$\therefore \quad \text{भ} = (\mu - 1) \frac{\text{ज्या (न)}}{\text{कोज्या (न)}} = (\mu - 1) \ \text{स्पर्शज्या (न)}$$
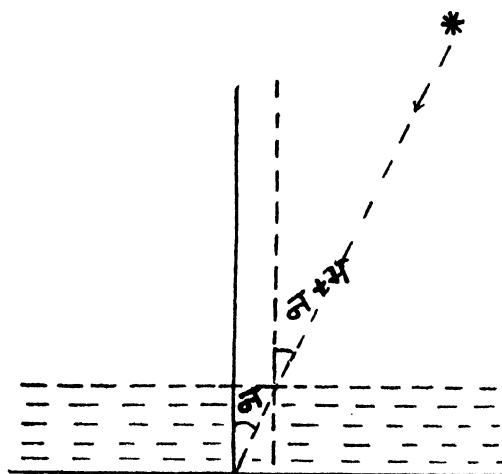
μ का मान-दर्शक के औच्च्य (Altitude Height) तथा स्थानविशेष के तापमान पर निर्भर करता है। (देखिए चित्र ४७)
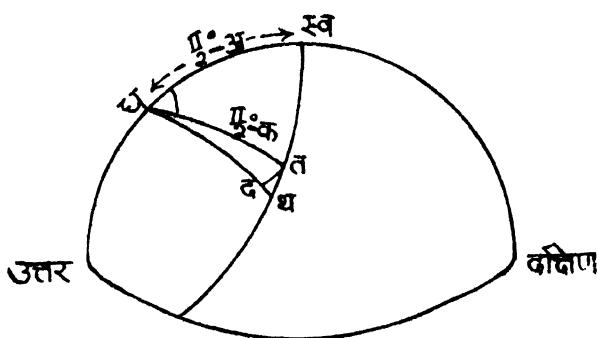
भुजायन का मान भी ताराओं के भिन्न-भिन्न समय पर मापे गये नतांशों के अन्तर को सूक्ष्म माप करके निकाला जाता है। भुजायन अथवा लम्बन से नतांश में जो भी अंतर हो,

उससे अपक्रम तथा संचार में क्या अंतर होगा, यह निम्नलिखित विधि से निकाला जाता है

चित्र ४७

चित्र ४८ में 'त' ताराविशेष का भूकेन्द्रीय मध्य स्थान है तथा लम्बन के कारण वह थ विंदु पर दिखाई देता है। 'स्व' स्वस्तिक अर्थात् शिरोविंदु है। ध ध्रुव है।

चित्र ४८

स्व त थ तारा का दृग्मंडल (Vertical Circle) है। यदि ध त तथा ध थ ध्रुव तथा त एवं थ को मिलानेवाले वलयांश (Arcs of great Circles) हैं तो

कोण धस्व $= 90^\circ -$ अ

π ·— अ

(अ = दर्शक का अक्षांश है तथा $\frac{\pi}{२}$ समकोण का चापमान है)

$$\text{कोण धत} = ९०^\circ - \text{क} = \frac{\pi}{२} - \text{क}$$

(क तारा का अपक्रम अर्थात् नाड़ीवलय से कोणीयांतर है)
कोण स्व ध त = तारा तथा स्वस्तिक का संचार भेद = स
कोण ध थ त = ध त (लगभग) = च के मान लिया जाय।

लम्बन = त थ

यदि तद रेखा ध थ पर लम्ब है
तो दथ = अपक्रम लंबन
दत = संचार-लम्बन
दत = तथ × ज्या (च)
दथ = तथ × कोज्या (च)
गोल त्रिकोण धतस्व में कोण त ध स्व = स

कोण ध त स्व = च

$$\text{चाप ध स्व} = \frac{\pi}{२} - \text{अ}$$

$$\text{चाप धत} = \frac{\pi}{२} - \text{क}$$

चाप स्वत = न
चाप तद = तथ × ज्या द थत = तथ × ज्या (च)
चाप दथ = तथ × कोज्या (च)

$$\frac{\text{ज्या (च)}}{\text{ज्या}\left(\frac{\pi}{२} - \text{अ}\right)} = \frac{\text{ज्या (स)}}{\text{ज्या (न)}}$$

$$\therefore \quad \frac{\text{ज्या (च)}}{\text{को (अ}} = \frac{\text{ज्या (स)}}{\text{ज्या 'न)}}$$

$$\text{अतः ज्या (च)} = \frac{\text{ज्या (स)}}{\text{ज्या (न)}} \times \text{को (अ)}$$

चाप दत = तथ × ज्या (ज)

$$= \text{तथ} \times \frac{\text{ज्या (स)} \times \text{को (अ)}}{\text{ज्या (न)}}$$

परन्तु तथ = ह्न × ज्या न), जहाँ ह्न = क्षैतिज लंबन
∴ दत = संचार-लंबन = ह्न × ज्या (स) × को (अ)
इसी प्रकार अपक्रम लंबन दथ

= तथ को (च) = ह्न × ज्या (न। × को (च)
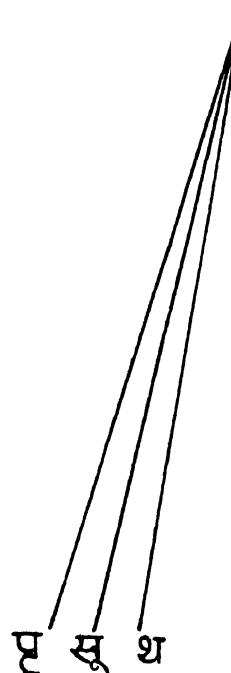
भुजायन से तारा नीचे की ओर न आकर ऊपर की ओर जाता है। भुजायन से संचार तथा अपक्रम में अंतर उपर्युक्त विधि में ही आवश्यक परिवर्तन करके निकाला जा सकता है।

क्षैतिज लम्बन ग्रह-विशेष की दूरी के विलोम (Inverse) के आनुपातिक है। इसका चाप (Radial) मान पृथ्वी के व्यासार्द्ध में ग्रह की दूरी से भाग देने से मिलता है।

ग्रहों का लम्बन तो पृथ्वी के व्यासार्द्ध को भुजा मानकर निकल सकता है; पर ताराओं की दूरी इतनी अधिक है कि पृथ्वी के धरातल पर स्थानान्तर से उनके पारस्परिक स्थान में कोई अंतर नहीं होता। ताराओं का वार्षिक लम्बन होता है अर्थात् पृथ्वी द्वारा सूर्य के चतुर्दिक् वार्षिक भ्रमण से उनमें परस्पर स्थानान्तर होता है। ताराओं में जो अतिदूर हैं, वे अपने-अपने स्थानों पर यथावत् दीख पड़ते हैं; परन्तु जो उतने दूर नहीं हैं, वे पृथ्वी के वार्षिक भ्रमण से स्थानांतरित दीख पड़ते हैं।

चित्र ४६ में तारा त है, सू सूर्य है। पृ० तथा थ पृथ्वी के दो स्थान हैं, जहाँ वह सू विंदु से क्रान्ति-वृत्त के धरातल पर खींचे गये लम्ब तथा तारा त के धरातल

चित्र ४९

में रहती है। कोण पृ त सू को तारा का वार्षिक लंबन कहते हैं। तारा पृ विंदु

से पृ त दिशा में तथा थ विंदु से थ त दिशा में दिखाई देता है। कोण पृ त थ = २ × कोण पृ त सू। अति दूर ताराओं की अपेक्षा पूरे वर्ष में इष्ट तारा के स्थान में अत्यधिक अंतर का अर्द्धांश तारा का वार्षिक लंबन होता है।

वार्षिक लंबन तथा तारा की दूरी निम्नलिखित रूप में सम्बद्ध है।

यदि पृथ्वी के भ्रमण कक्ष का व्यासार्द्ध र हो तारा की दूरी 'ख' हो तथा सूर्य और तारा में कोणीयांतर ण हो तो

$$\frac{\text{ज्या (पृ त सू)}}{\text{ज्या (सू पृ त)}} = \frac{\text{सू पृ}}{\text{सू त}}$$

$$\therefore \text{ ज्या (पृ त सू)} = \frac{\text{र}}{\text{ख}} \times \text{ज्या (ण)}$$

वर्ष में दो बार ण = ९०° के होता है।

ऐसे स्थान में

$$\text{ज्या (पृ त सू)} = \frac{\text{र}}{\text{ख}}$$
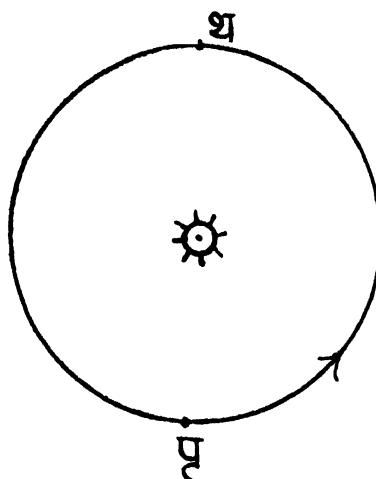
इसीको वार्षिक लंबन कहते हैं। वास्तव में अति निकट ताराओं का भी वार्षिक लम्बन एक विकला (Second) का एक न्यून अंश ही होता है। इसका चापमान उसकी ज्या के समान होगा। अतः चापमान में वार्षिक लम्बन (व० ल०) पृथ्वी की कक्षा के व्यासार्द्ध में तारा की दूरी का भागफल है।

ताराओं की दूरी अत्यधिक है। स्वयं सूर्य की दूरी (अर्थात् पृथ्वी की भ्रमण-कक्षा का माध्यमिक व्यासार्द्ध) ९३,०००,००० मील है। निकटतम ताराओं की भी दूरी १००,०००, ०००, ०००, ००० मील के लगभग है। ताराओं की दूरी इसलिए मीलों में न लिखकर प्रकाशवर्ष अथवा परिविकला में दी जाती है। प्रकाशवर्ष वह दूरी है, जिसे पार करने में एक सेकेंड में १८६००० मील की गति से चलकर प्रकाश को एक सायन सौर वर्ष (Tropical Year) लगता है। परिविकला वह दूरी है, जिसका वार्षिक लम्बन एक विकला हो अर्थात् वार्षिक लम्बन को विकला में लिखें तो उसका १ में भागफल परि-विकला में तारा की दूरी बतलायगा।

प्रकाश की गति रोमर नामक डेनमार्क के ज्योतिषी ने १७ वीं शताब्दी में बृहस्पति के उपग्रहों के ग्रहणों के अंतर से निकाला। उन्होंने देखा कि जैसे-जैसे बृहस्पति पृथ्वी के समीप आता है, ग्रहण अपने समय से कुछ पहले होते तथा जैसे-जैसे बृहस्पति पृथ्वी से दूर जाता है वैसे ग्रहण अपने गणित-समय से पीछे होते हैं। (देखिए चित्र ५०)

यदि पृथ्वी के पृ स्थान पर बृहस्पति के चन्द्रमा-विशेष के एक ग्रहण से दूसरे ग्रहण तक का कालांतर 'ल' हो तथा पृ विंदु से थ विन्दुतक ग्रहणों की संख्या क हो, तो थ

चित्र ५०

विंदु से 'क' वाँ का ग्रहण ग क × ल काल के अंतर पर देखा जाना चाहिए। वास्तव में ग्रहण इससे १६ मिनट पहले हुआ, जो समय प्रकाश को पृथ्वी की कक्षा का व्यास पार करने में लगता है। इसके पश्चात् प्रकाश की गति मापने की अन्य अनेक रीतियाँ निकलीं। पृथ्वी की कक्षा के अर्द्धव्यास को निकालने की रीतियों में प्रधान रीति भी ऊपर की ही है, जिसमें प्रकाश की गति जानकर कक्षा का अर्द्धव्याम निकाला जा सकता है।

सोलहवाँ अध्याय

विश्व-विधान

ताराओं के स्थूलत्त्व का अर्थ पहले बताया जा चुका है। आँखों से अथवा प्रकाश-मापक यंत्रों से सापेक्ष स्थूलत्व अर्थात् पृथ्वी पर स्थित दर्शक द्वारा देखे जाने से जो स्थूलत्व ज्ञात हो, उसीका पता चलेगा। तारा की दीप्ति उसकी दूरी के वर्ग के विलोमानुपातिक (Inversely proportional) होगी। लम्बन-विधि से तारा की दूरी ज्ञात करके फिर उसके वर्ग को सापेक्ष दीप्ति से गुणा करे। इस संख्या को निरपेक्ष दीप्ति मान कर फिर ताराओं के परस्पर स्थूलत्व का मान निकाले। वही तारा का निरपेक्ष स्थूलत्व (Absolute Magnitude) होगा।

ताराओं का आकार शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्रों से भी नहीं ज्ञात होता, पर प्रकाश का तरंगमान अत्यन्त सूक्ष्म है तथा तारा के दोनों छोर से आये प्रकाश में तरंग-शृंगार (Wave Interference Pattern) होता है, उसे माप कर तारा के आकार का पता चलता है।

यदि तारा के प्रकाश को किसी प्रकार के प्रकाश-विश्लेषक यंत्र-द्वारा देखा जाय तो उसके प्रकाश की सतत रंगावलि (अधोरक्त—रक्त—नारंग—पीत—हरित—नील—रक्त-नील, नील-लोहित—पार नील-लोहित) पर अनेक कृष्ण रेखाएँ दीख पड़ेंगी। ये रेखाएँ तारा के धारातल के समीप के पदार्थों की रंगावलि की रेखाएँ हैं।

ताराओं के धरातल का तापमान दो प्रकार से निकाला जाता है। आकार तथा निरपेक्ष स्थूलत्व के ज्ञान से तारा के धरातल से प्रकाश के रूप में कितना तेज विकीर्ण होता है,

इससे तारा के धरातल का तापमान प्राप्त हो सकता है। आकार जाने बिना भी तारा का तापमान उसकी रंगावलि से प्राप्त हो सकता है। यह मोटी बात सब कोई जानते हैं कि लोहा को जैसे-जैसे गर्म किया जाय, पहले वह रक्तवर्ण फिर पीछे श्वेत तथा नीलश्वेत वर्ण हो जाता है। रंगावलि के एक छोर से दूसरे छोर तक को समान तरंग-मानान्तर (Wavelength difference) के छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर ले तथा प्रत्येक भाग के अन्तर्गत विकिरण को मापे तो किस तरंग मान के समीप यह विकिरण सबसे अधिक है, इसके ज्ञान से तारा का तापमान निकल सकता है। इस तरंगमान को परम विकिरण तरंग मान (Wavelength of Maximum Radiation) कहते हैं।
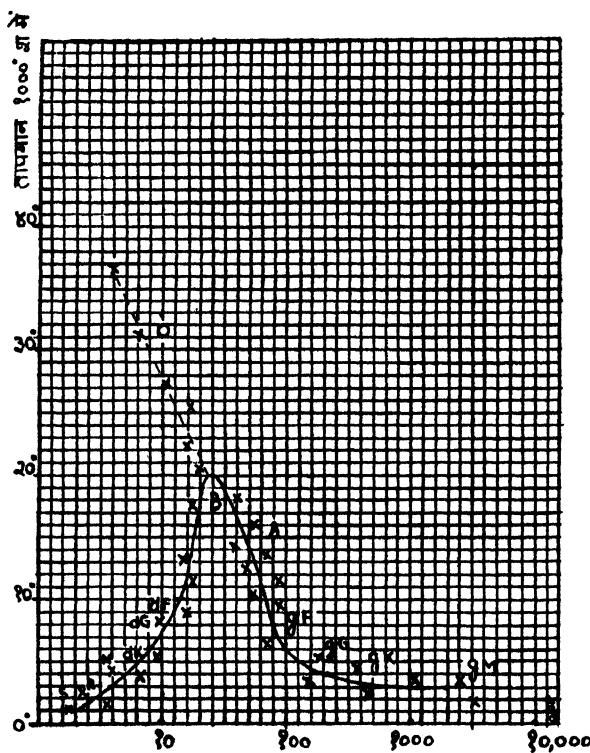
भारतीय वैज्ञानिक श्री मेघनाद साहा ने ताराओं का तापमान प्राप्त करने की एक और विधि निकाली है। प्रत्येक तत्त्व-पदार्थ (लोहा, जस्ता इत्यादि) के अणु (Atom) विशेष-तापमान पर एक-एक परमाणु (Electron) से हीन हो जाते हैं जिससे उनकी रंगावलि बदल जाती है। इसे तापोद्भव अणुभंजन (Thermal ionization) कहते हैं। तारा की रंगावलि की कृष्ण रेखाएँ किन तत्त्वों की अथवा उनके एक अथवा अनेक परमाणु-हीन (Singly or Multiply ionized) रूप की हैं, इससे ही तारा-धरातल के तापमान का अनुमान हो सकता है। उपर्युक्त उपायों से तारा के धरातल के तापमान को निश्चित करके तारा के निरपेक्ष स्थूलत्व से उसके अर्द्धगोल धरातल से पृथ्वी की ओर विकिरित प्रकाश का मान निश्चित हो सकता है। यदि तापमान समान हो तो धरातल से विकरित प्रकाश का मान उस धरातल के क्षेत्रफल के आनुपातिक होगा। इस प्रकार तारा के ज्ञात तापमान तथा विकिरण से उसके अर्धगोल का क्षेत्रफल एवं उससे तारा का व्यास प्राप्त हो सकता है।

ताराओं के आकार, तापमान, रंगावलि विकिरण (Radiation) इत्यादि को सम्बद्ध करनेवाले सूत्रों को समझने के लिए उच्च भौतिक शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। इसी कारण यहाँ इनके मापने की विधि का स्थूल परिचय मात्र कराया गया है। रंगावलि से से ही ताराओं का तापमान तथा उनके धरातल के तत्त्वों का पता चलता है। ताराओं की रंगावलियाँ पाश्चात्य वर्णमाला के O, B, A, F, G, K, M, N, R, S अक्षरों द्वारा सूचित वर्गों में विभक्त हैं। पहले यह वर्गीकरण अँगरेजी वर्णमाला के अक्षरों के क्रम के अनुसार था; पर पीछे नूतन शोध के फलस्वरूप इन वर्गों में अंतर हुए तथा इन्हें ताराओं के तापमान-क्रम के अनुसार बनाया गया। इनके अनुवर्ग O_a O_b O_c अर्थात् इन बड़े अक्षरों के साथ पाश्चात्य वर्णमाला के छोटे अक्षरों को मिलाकर सूचित होते हैं। एक वर्ग तथा दूसरे वर्ग के मध्य के तारे वर्ग के चिह्न में १, २, ३ इत्यादि संख्याओं को मिलाकर सूचित होते हैं। इन वर्गों के तापमान का क्रम तथा रंगावलि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित सारिणी में दी हुई हैं। तापमान शतिक अंशों (Centigrade Degrees) में है। बर्फ के पिघलने का तापमान शून्य तथा जल के खौलने का तापमान १००° श है।

तारा वर्ग	तापमान	तारा रंग तथा रंगावलि
O	३५,०००°श से ४०,०००°श	परम विकिरण—हरित। तारा रंग हरितोज्ज्वल (Greenwish white) तरंगावलि रेखा जल जन परमाणु-हीन हीलिअम-कैलसिअम
Bo	२३,०००°श से १५,०००°श	किंचित हरित् श्वेत-रंगावलि रेखा—हीलिअम, परमाणु-हीन आक्सीजन तथा नाइट्रोजन
A	११,०००°श से ८,५००°श	रंग-श्वेत-रंगावलि रेखा-जल जन, कैलसिअम-परमाणु हीन लौह इत्यादि
F	७,५००°श से ६,०००°श	श्वेत-रंगावलि रेखा-जल जन, विविध धातु
G	६,००°श से ५,५००°श	किंचित् पीत - श्वेत - परमविकिरण - पीत। तरंग-मान—जल जन लौह—विविध धातु
K	४,२००°श से ३,४००°श	तारा रंग—नारंग—तापमान कम होने से अनेक पदार्थ व्यूहाणु (Molecular) अवस्था में। मुख्यतः उदांगार (Hydro-carbons)
M	३५,०००°श से २,७००°श	तारा रंग-रक्त मिश्रित नारंग
N	२,६००°श	तारा रंग-रक्त
R	२,३००°श	अतिसूक्ष्म-रक्त
S	२,०००°श	केवल दूरवीक्षण यंत्र से दर्शनीय रक्तवर्ण।

इनमें O, B, A वर्ग के ताराओं के आकार में परस्पर बहुत अंतर नहीं है; पर F, G, K, M, इत्यादि वर्ग के ताराओं में अतिशय बृहत् अथवा अतिलघु तारे होते हैं, जिन्हें क्रमशः Giant (दैत्य) तथा Dwarf (बौना) कहते हैं। इन ताराओं को पाश्चात्य वर्णमाला के g तथा d अक्षरों से सूचित किया जाता है। ताराओं के आकार को भुजा (x-axis) तथा तापमान को कोटि (y-axis) मानकर उनकी विंदु-रेखा खींची जाय तो वह चित्र ५१ के समान होती है। इस चित्र में तारा के अर्द्ध व्यास को छेद विधि के अनुसार

दिखाया गया है, अर्थात् शून्य से भुजा की दिशा (x-axis) में दूरी वास्तविक अर्द्धव्यास के दशिक छेदा (Logarithm to base 10) के आनुपातिक है।

चित्र ५१

आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक तारा g M अवस्था में अपना जीवन आरंभ करता है। गुरुत्वाकर्षण से उसका आकार घटता जाता है; पर अणुओं की परस्पर गति की वृद्धि से उसका तापमान बढ़ता जाता है। A. अथवा B. अवस्था को पहुँच कर तारा फिर शीतल होने लगता है तथा dF, dG, dK, N, R, S अवस्थाओं से होकर और बुझ कर कठोर प्रस्तर खंड हो जाता है। वास्तव में ताराओं की जीवन-कथा इतनी सरल नहीं है। O वर्ग के तारे इससे कुछ भिन्न जीवन व्यतीत करते दीख पड़ते हैं। गुरुत्वाकर्षण ताराओं को घनीभूत करना चाहता है; पर ऐसा करने में ही तारा-स्थित पदार्थ के अणुओं का परस्पर वेग बढ़ जाता है, जिससे केवल तापमान ही नहीं बढ़ता, वरन् उस वाष्पीभूत पदार्थ का दबाव भी बढ़ जाता है, जिससे तारे के आकार में वृद्धि होकर गुरुत्वाकर्षण के फल का प्रतीकार होता है। जैसे-जैसे ताप-विकिरण (Radiation of heat) से तारा शीतल होता जाता है, वैसे-वैसे यह दबाव भी कम होता जाता है। ताराओं के तापमान तथा घनमान (Density) में एवं उनमें वर्त्तमान अणुओं की अत्यधिक गति के कारण

साधारण भौतिक तथा रासायनिक नियम उनमें लागू नहीं होते। अनेक ताराओं का आकार परिवर्त्तित होता रहता है। कभी-कभी आकाश में अकस्मात् नये तारे (Novae) निकल आते हैं, जो O वर्ग के होते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रख कर विख्यात भारतीय ज्योतिषी चन्द्रशेखर ने यह सिद्ध किया है कि ताराओं के आकार-तापमान इत्यादि आधुनिक सापेक्षिक भौतिक शास्त्र (Relativity Physics) के अनुकूल हैं।

नीचे लिखी सारिणी में कुछ प्रमुख ताराओं के सापेक्ष एवं निरपेक्ष स्थूलत्व, परिविकला में उनकी दूरी, रंगावलि वर्ग तथा व्यास दिये हुए हैं।

तारा	सापेक्ष-स्थूलत्व	निरपेक्ष स्थूलत्व	परिविकला	रंगावलि	व्यास १००००० मील में
सूर्य	−२६·७	३.०	×	G	८·५
आर्द्रा Betelgeuse	०·६०	−२·६	५८·८	g M	२५६·२
रोहिणी Aldebaran	१·०६	− ०·२	१७·५	g K	३२·६
स्वाती Arcturus	०·२४	− ०·२	१२·५	g K	२३·४
ज्येष्ठा Antares	१·२२	− १·७	३८·५	g M	२०·०
लुब्धक Sirius	− १·५८	+ १·३	२·७	A	१·५
अभिजित् Vega	०·१४	०·६	८·१	A	२·०

दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से आकाश में अब तो अनेक नीहारिकाएँ (Nebulae) देखी गई हैं; पर उपदानवी तथा कालपुरुष मंडल की नीहारिकाएँ तारास्तवक (Star Clusters) के नाम से बहुत दिनों से प्रसिद्ध हैं। अंधेरी रात को इन्हें विना किसी यंत्र के देख सकते हैं। दूरवीक्षण यंत्र से अनेक तारास्तवक (जिनमें आकाश गंगा भी है) वास्तव में ताराओं के सघन पुंज के रूप में दिखाई पड़े। पर अनेक 'तारास्तवक' अति शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्र से भी नीहारिका के रूप में ही दिखाई पड़े। इन नीहारिकाओं को उनके रूप के अनुसार दो वर्गों में विभक्त किया गया है—(१) अनियमित नीहारिकाएँ, (२) कुंतल (Spiral) नीहारिकाएँ। अनियमित नीहारिकाओं की रंगावलि से वे जलजन तथा हीलिअम के चमकीले समूह-जैसी दीख पड़ती हैं। कुंतल नीहारिकाओं में कुछ की रंगावलि तो लगभग इसी प्रकार की हैं; पर उनमें पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक सघन रूप में हैं। इन्हें ग्रहावलि नीहारिकाएँ (Planetry Nebulae) कहते हैं। ये एक सूर्य तथा उसकी ग्रहावलि के प्रारंभिक रूप हैं।

पर अनेक कुंतल नीहारिकाओं की रंगावलि O, B, A, F, G इत्यादि वर्ग के ताराओं के सम्मिश्रण के समान है। वार्षिक लम्बन द्वारा १००० प्रकाश वर्ष दूर तक के ताराओं

की दूरी मापी गई है। इससे दूरस्थ ताराओं की दूरी के अनुमान की विधि निम्नलिखित है। परिवर्त्तनीय प्रकाशवाले ताराओं के प्रकाश-परिवर्त्तन के बारंबारत्व (Frequency) तथा उनके निरपेक्ष स्थूलत्व अर्थात् तारे से विकिरित प्रकाश के वास्तविक मान में एक विशेष सम्बन्ध पाया गया है, जिससे प्रकाश-परिवर्त्तन की बारंबारता जानकर परिवर्त्तनीय ताराविशेष का स्थूलत्व जाना जा सकता है। तारे की सापेक्ष दीप्ति दूरी के वर्ग के विलोमानुपातिक होती है। सापेक्ष स्थूलत्व को माप कर तथा उपर्युक्त रीति से निरपेक्ष स्थूलत्व का अनुमान करके तारे की दूरी का अनुमान हो सकता है। इस प्रकार आकाशगंगा के ताराओं की दूरी २००,००० से ५०,००० परिविकला (१ परिविकला = ३·२६ प्रकाश वर्ष) तक पाई गई है। आकाशगंगा का केन्द्र वृश्चिक राशि के ताराओं के बीच पाया गया है, जो पृथ्वी (अर्थात् सूर्य) से कोई १०,००० परिविकला की दूरी पर है। आकाशगंगा का व्यास कोई ६०,००० परिविकला है।

जिन कुंतल नीहारिकाओं की रंगावलि O, B इत्यादि ताराओं के सम्मिश्रण जैसी होती है, उनकी दूरी आकाशगंगा के अति दूरस्थ ताराओं से कहीं अधिक है। उपदानवी की सुप्रसिद्ध नीहारिका, जो अंधेरी रात में आँखों से भी दिखाई देती है, इस प्रकार की सबसे निकटवर्ती नीहारिका है। इसकी दूरी लगभग २१०००० परिविकला है। इस प्रकार की रंगावलि की अन्य नीहारिकाएँ और भी दूर हैं। आकाशगंगा (galaxy) से बाहर होने के कारण इन्हें पारगाङ्गेय (Extra Galactic) कहते हैं। अबतक कोई २,०००,००० पारगाङ्गेय नीहारिकाओं के चित्र शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्रों द्वारा लिये गये हैं। ये पारगाङ्गेय नीहारिकाएँ वास्तव में हमलोगों के संसार की भाँति हैं। यदि कोई इन नीहारिकाओं से हमारी ओर देखता होगा, तो उसे आकाशगंगा (उसके अन्तर्गत सभी तारे अपने-अपने ग्रह-उपग्रह आदि सहित) वाष्पीय नीहारिका के रूप में ही दिखाई देगी। इनमें से प्रत्येक हमारे संसार के समान एक संसार है। इनमें से जो संसार अधिक दूर नहीं हैं अर्थात् जहाँ से प्रकाश को आने में कोई दस-बीस लाख वर्ष ही लगते हों, उनके अन्तर्गत परिवर्त्तनीय प्रकाशवाले ताराओं के प्रकाश-परिवर्त्तन के बारंबारत्व को माप कर उनकी दूरी का अनुमान किया जा सकता है। उनकी रंगावलि में पार्थिव पदार्थों की रंगावलि रेखाएँ वर्त्तमान हैं; पर इन रेखाओं का तरंगमान कुछ बढ़ा हुआ है, जिससे यह सिद्ध होता है कि ये नीहारिकाएँ हमारे संसार से दूर होती जा रही हैं। तरंगमान के भेद को माप कर तथा प्रकाश की जानी हुई गति से नीहारिकाओं की गति का अनुमान हो सकता है। इन नीहारिकाओं की दूरी तथा उनकी गति एक दूसरे के आनुपातिक पाई गई हैं, अर्थात् दूरस्थ नीहारिकाएँ निकटस्थ नीहारिकाओं की अपेक्षा अधिक वेग से हमारे संसार से दूर हटती जा रही हैं।

आकाशीय विश्व का ज्ञान प्रकाश की गति, रंगावलि, तरंगमान, तरंगमान के भेद इत्यादि द्वारा ही होता है। अतः विश्व के विधान को समझने के लिए प्रकाश के वास्तविक रूप का ज्ञान आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रकाश को निष्पदार्थ व्योम (Immaterial Ether) की तरंगों के रूप में जानते थे। यदि वास्तव में ऐसा हो तो पृथ्वी पर स्थित

दर्शक भिन्न दिशाओं में प्रकाश की गति का मान भिन्न-भिन्न पायेगा। पृथ्वी सूर्य के चतुर्दिक् कोई १९ मील प्रति सेकेंड के वेग से अपनी कक्षा की परिधि पर चल रही है। पृथ्वी सूर्य के अनेक ग्रहों में एक है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि पृथ्वी व्योम में स्थिर है। वस्तुतः पृथ्वी तो सूर्य के दास के सदृश है। यदि सूर्य व्योम में स्थिर है तो पृथ्वी की व्योम में गति १९ मील प्रति सेकेंड है। सूर्य यदि व्योम में चलायमान है तो पृथ्वी की व्योम में गति अपनी १९ मील प्रति सेकेंड की गति तथा व्योम में सूर्य की गति का सम्मिश्रण है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रकाश की गति माप कर पृथ्वी के व्योम में गति का मान निकालने के सभी प्रयास विफल रहे। भौतिक शास्त्र की ऐसी अनेक कठिनाइयों को बीसवीं शताब्दी के आरंभ में आइन्स्टाइन ने अपने सापेक्ष-सिद्धान्त से दूर किया।

आइन्स्टाइन ने बातें बड़ी सरल कहीं। उन्होंने कहा कि निरपेक्ष गति (Absolute Motion) का कोई अर्थ नहीं। गति सर्वदा अवलोकक (observer) के सापेक्ष (Relative) होती है। प्रत्येक अवलोकक अपने देश (Space) तथा काल (Time) को अपने साथ लिये फिरता है। भिन्न अवलोककगण के देश तथा काल भिन्न-भिन्न हैं। वास्तव में देश तथा काल एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। विश्व उनके सम्मिश्रण से बना है। अवलोकक की चेतना ही इस विश्व को उसके सापेक्ष देश तथा काल में विभक्त करती है। प्रकाश की गति देश-काल के सम्मिश्रण का गुण है; अतः अवलोकक पर इसकी निर्भरता नहीं है। कोई भी दो अवलोकक जो एक-दूसरे की अपेक्षा गतिमान हों, वे यदि प्रकाश की गति को मापें तो उन्हें सर्वदा एक ही फल प्राप्त होगा। प्रकाश में वैद्युत-तरंग, ताप तरंग, अधोरक्त प्रकाश, रक्त से नील-लोहित तक के रंगवाले प्रकाश, परिनील-लोहित प्रकाश, एक्स-रे (X-Ray) तथा तेजोद्गर (Radio active) पदार्थों से विकिरित गामा रे (γ-Ray) सभी सम्मिलित हैं। उपर्युक्त सिद्धान्त से ही भिन्न-भिन्न अवलोककगण के अपेक्षाकृत उनके काल तथा देश का भेद निकाला जा सकता है।

इन सरल धारणाओं से आइन्स्टाइन ने पदार्थों के भौतिक गुणों के नियम नये सिरे से निकाले। इन धारणाओं के समक्ष न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम निरर्थक हो गया; क्योंकि सूर्य तथा पृथ्वी के बीच की दूरी का कोई अर्थ नहीं रहा, जब मंगल अथवा शनि पर स्थित अवलोकक इस दूरी का भिन्न-भिन्न मान प्राप्त करेंगे। यदि दो अवलोकक क तथा ख की एक दूसरे की अपेक्षा कृत गति ग है तथा प्रकाश की गति स है तो उनमें से प्रत्येक के लिए दूसरे के सापेक्ष समय का अंतर $\left[\frac{१}{\sqrt{१ - ग^२/स^२}}\right]/स^२$ के अनुपात में बढ़ जायगा तथा सापेक्ष गति दिशा के विंदुओं की दूरी $\sqrt{१ - ग^२/स^२}$ अनुपात में कम हो जायगी। एक अवलोकक के सापेक्ष स्थिर पदार्थ का गुरुत्व यदि $म_०$ है तो दूसरे अवलोक के सापेक्ष उसका गुरुत्व $\frac{म_०}{\sqrt{१ - ग^२/स^२}}$ हो जायगा।
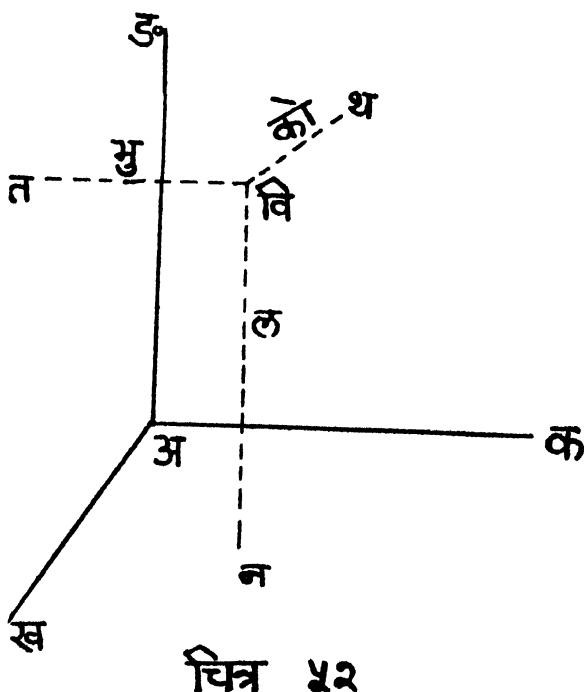
इन नियमों की विशेषता यह है कि क को स्थिर तथा ख को चलायमान अथवा क को चलायमान तथा ख को स्थिर मानने से इनमें कोई भेद नहीं होता तथा इन्हीं नियमों से क के सापेक्ष काल, देश अथवा गुरुत्व से ख के सापेक्ष काल, देश अथवा गुरुत्व प्राप्त हो सकते हैं। सापेक्ष गतिविज्ञान (Relativity Dynamics) का मूल नियम यह है कि भुजा कोटि, लम्ब तथा $\sqrt{-१}$ × समय ये चारों मिलकर ही विश्व-स्थित विंदु-विशेष को पूर्णतः निश्चित करते हैं तथा प्रत्येक अवलोकक के लिए भुजा, कोटि, लम्ब तथा समय का मान उस अवलोकक के सापेक्ष है। एक दूसरे से लम्ब तीन रेखाएँ अवलोकन विंदु (observation Point) से खींची जायँ तथा उनमें से प्रत्येक दो के धरातल से किसी विंदुविशेष की दूरी मापी जाय तो विंदु की तीन संज्ञाएँ (Co-ordinates) मिलेंगी। सापेक्ष-सिद्धान्त के पहले इन्हीं तीन संज्ञाओं से विंदु का स्थान निश्चित होता था। आइन्सटाइन का विश्व त्रिसंज्ञक न होकर चतुःसंज्ञक हुआ। त्रिसंज्ञक विश्व में दो विंदुओं की दूरी निम्न लिखित सूत्र से प्राप्त होती है—

$$(\delta \text{ द})^2 = (\delta \text{ भु})^2 + (\delta \text{ को})^2 + (\delta \text{ ल})^2$$

जहाँ δ द दोनों विंदुओं की परस्पर दूरी है तथा δ भु, δ को एवं δ ल क्रमशः उनकी भुजा, कोटि तथा लम्ब के अंतर हैं।

चित्र संख्या ५२ में विंदु वि से वित, विथ, विन, क्रमशः ख अ ङ, ङ, अ क, तथा क अ ख,

चित्र ५२

धरातल पर लम्ब है। आइन्सटाइन के चतुः संज्ञक विश्व में चतुर्थ संज्ञा ($\sqrt{-१}$ × काल) है।

वैश्लेषिक गणित (Analytical Geometry) में कितनी भी तथा किसी प्रकार की संज्ञा का व्यवहार कर सकते हैं, जिनका चित्र बनाना मनुष्यों के इस त्रिसंज्ञक संसार में संभव नहीं है। ($\sqrt{-१}$ × काल) को आइन्सटाइन तथा उनके सिद्धान्त की पुष्टि करनेवालों ने वास्तविक काल कहा तथा उसे ग्रीकवर्णमाला के T अक्षर से व्यक्त किया। इस चार संज्ञावाले विंदु का सूक्ष्म स्थानांतर (Interval) (δ द) निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात होगा:—

$$(\delta \text{ द})^2 = (\delta \text{ भु})^2 \times (\delta \text{ को})^2 \times (\delta \text{ ल})^2 \times (\delta T)^2$$

आइन्सटाइन की धारणा हुई कि भौतिक विश्व की संभूतियों का परस्पर प्रभाव अवलोकक से असम्बद्ध है, तथा वाह्य आरोपित बल के अभाव में गति इस प्रकार होती है कि गमन-मार्ग के विंदुओं का चतुःसंज्ञक अंतर

(δ द $= \sqrt{\delta \text{ भु})^2 \times (\delta \text{ को})^2 \times (\delta \text{ल})^2 \times (\delta T^2}$) कम-से-कम हो। इन धारणाओं से आरंभ करके आइन्सटाइन ने सिद्ध किया कि पदार्थ (Matter) चतुःसंज्ञक विश्व की (चतुःसंज्ञक) रेखाओं में विकुंचन (kink) मात्र है। इससे भारी पदार्थों की एक दूसरे की सापेक्षिक गति देशकाल के विकुंचन के फल के रूप में निकली। सापेक्षिक गति नियमों के अनुसार ग्रह के रविसमीपक विंदु को (अर्थात् ग्रह के कक्षावृत्त को) सूर्य के चतुर्दिक भ्रमण करना चाहिए था। प्रकाश की किरण को भी भारी पदार्थ-समूह के समीप पथान्तरित हो जाना चाहिए था तथा भारी पदार्थों से निकले प्रकाश का तरंगमान थोड़ा बढ़ जाना चाहिए था। बुध का रविसमीपक विंदु वास्तव में सूर्य के चतुर्दिक् भ्रमण करता हुआ पाया गया। सूर्य के अत्यन्त समीप होने के कारण बुधग्रह में ही यह फल स्पष्ट जान पड़ता है। पूर्ण सूर्यग्रहण में सूर्य के समीप के ताराओं का स्थानान्तर भी देखा गया तथा भारी ताराओं के प्रकाश में रंगावलि रेखाएँ (Spectral Lines) रक्तवर्ण की ओर हटी पाई गईं अर्थात् उनका तरंगमान अधिक पाया गया। आधुनिक वेध ने आइन्सटाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त की सम्पूर्ण रूप से पुष्टि की है।

इस सिद्धान्त में पदार्थ तथा तेज (Radiation) में कोई अंतर नहीं रह जाता। दोनों एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। $म_0$ गुरुत्व के पदार्थ खंड के विनाश से $म_0 \times स^2$ मान का तेज (Radiation) निकलता है। पदार्थ-तत्त्वों (Elements) के अणुओं का परस्पर परिवर्त्तन हो सकता है। इन नियमों से सूक्ष्म पदार्थ-समूह (वाष्पीय नीहारिका) से ताराओं की उत्पति के नियम निकले हैं, जिनकी वेध द्वारा पुष्टि हुई है। पर सापेक्ष-सिद्धान्त का ज्योतिष में वास्तविक महत्त्व पारगाङ्गेय नीहारिकाओं की गति तथा उनके परस्पर क्रम का अर्थ समझने में है। सापेक्ष-सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ अथवा तेज की परमगति प्रकाश की गति स के समान है, जो स्वयं देशकाल संतति (Space Time Continuum) का अपरिवर्त्तनीय गुण है। यदि अवलोकक क की अपेक्षा अवलोकक ख की गति 'ग' है तथा अवलोकक ख की अपेक्षा अवलोकक च की गति 'घ' है तो सापेक्ष-सिद्धान्त के

→ग

कं खं चं

→घ

अनुसार क की अपेक्षा च की गति (ग + घ) न होकर

$$\frac{ग + घ}{१ + \frac{ग \times घ}{स^{२}}}$$ के
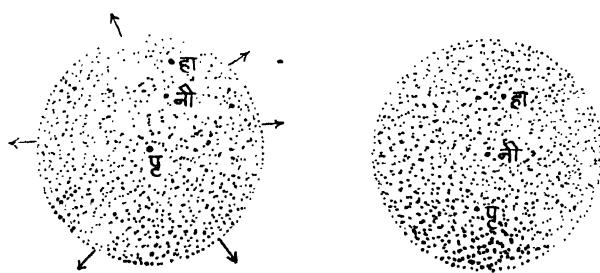
समान होगी। इस सूत्र में स प्रकाश की गति है। अवलोकक की सापेक्षिक गति से देशान्तर (Space interval) $\sqrt{१ - ग^{२}/स^{२}}$ के अनुपात में कम हो जाता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, पारगाङ्गेय नीहारिकाएँ सूर्य की (अथवा आकाशगंगा की) अपेक्षा दूर होती जा रही हैं तथा उनकी गति उनकी दूरी के आनुपातिक है। जैसे-जैसे दूरी तथा गति 'ग' का मान बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे पृथ्वी पर स्थित अवलोकक की अपेक्षा नीहारिकाओं की परस्पर दूरी भी कम होती जाती है। यथा, यदि ऊपर दिये उदाहरण में 'क' आकाशगंगा में है, ख उपदानवी नीहारिका में तथा च किसी अन्य नीहारिका में, जो पृथ्वी से उसी सीध में दीख पड़े, तो यदि ख में स्थित दर्शक को च की दूरी 'ब' परिविकला दीख पड़े तो क को ख से च की दूरी ब$\sqrt{(१ - ग^{२}/स^{२})}$ ही दीख पड़ेगी। चित्र ५३ में विश्व की तारापुंज

चित्र ५३

नीहारिकाएँ दिखाई गई हैं। पृथ्वी पर स्थित दर्शक 'पृ' विंदु पर है। उसके विश्व की सीमा वहाँ है, जहाँ की नीहारिकाएँ लगभग प्रकाश के वेग से उसकी अपेक्षा दूर होती जा रही हैं। अब यदि अवलोकक नीहारिका 'नी' में चला जाय तो उसकी अपेक्षा 'पृ' की दिशा में दूरियाँ कम हो जायेंगी तथा उसकी उलटी दिशा में सापेक्षिक गति कम होने के कारण दूरियाँ अधिक हो जायँगी। अतः अवलोकक फिर भी अपनेको विश्व के केन्द्र में पायगा।

विश्व में कोई विंदु निरपेक्ष केन्द्र विंदु नहीं है। जहाँ भी अवलोकक हो, वही उसके विश्व का केन्द्र है तथा विश्व सतत विस्तारित होता जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है? कब तक होता रहेगा? इन प्रश्नों के उत्तर अभी तक प्रायः काल्पनिक हैं। सम्पूर्ण विश्व एक महाणु (Universal Atom) ब्रह्माण्ड था, जिसके स्वतः विस्फोट से विश्व की उत्पत्ति हुई, अथवा देशकाल (Space time) का स्वाभाविक गुण यत्र-तत्र संकुचित होकर पदार्थ तेज के परस्पर परिवर्त्तन का आरंभ करना है,—क्या यह परिवर्त्तन एक प्रकार का कम्पन है,—इन सभी अनुमानों से विश्व के उत्पत्ति के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त निकाले गये हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति ने सृष्टि के रहस्यों का उद्घाटन नहीं किया है, वरन् वास्तव में सृष्टि कितनी रहस्यमय है, इसका भास कराया है। इस रहस्योद्घाटन में तथा विशेषकर ज्योतिषीय ज्ञान की प्रगति से मनुष्य ताराओं तथा नीहारिकाओं में होनेवाले आणविक विस्फोट को पृथ्वी पर संभव कर सके हैं। इससे कुछ मनुष्यों का नाश हुआ तो क्या? स्रष्टा की सृष्टि सत्य, शिव एवं सुन्दर है तथा आइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त ने भौतिक जगत् के नियमों को भी सत्यं, शिवं, सुन्दरं का रूप दे डाला है। विश्व निरपेक्ष है, अतः सत्य है। अवलोकक विश्व को अपनी सीमित चेतना रूपी ऐनक से देखकर इसे अपने ही रँग में रंग डालता है। देशकाल का सम्मिलित विश्व अवलोकक से परे शिव है। भौतिक संज्ञाएँ (Physical Entities) सरलता (Simplicity) तथा सम्मिति (Symmetry) के सुन्दर नियमों से सम्बद्ध हैं। आइन्सटाइन की पद्धति में न सूर्य केन्द्र है, न पृथ्वी और न उनके आकर्षण का ही कोई स्वतः अस्तित्व है। देशकाल(Space-time) का विकुंचन ही सूर्य तथा पृथ्वी है, एवं उनका आकर्षण भी है तथा उनकी गति का कारण है। सूर्यसिद्धान्त के लेखक ने भी 'अदृश्य रूपाः कालस्य मूर्त्तयो' (अदृश्य काल के मूर्त्ति स्वरूप) शीघ्रोच्च, मन्दोच्च (Perigee Apogee) तथा पात (Nodes) को ही ग्रहों की गति का कारण माना था (सूर्य सि० २/१)। ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन भी अदृश्य अज्ञेय ईश्वर के ही समीप पहुँचने की चेष्टा है।

परिशिष्ट

(क) पारिभाषिक शब्दकोष

संस्कृत शब्द	सहायक ग्रन्थ		अँगरेजी रूप
नाक्षत्र अहोरात्र	सूर्यसिद्धान्त	१/१२	Sidereal Day and Night
सावन दिवस	,,	१/१२	Terrestrial Day and Night
भगण	,,	१/२६	Sidereal Revolution
६० विकला = १ कला	,,	१/२८	60″ = 1′
६० कला = १ अंश			60′ = 1°
३० अंश = १ राशि			30° = 1 Sine
१२ राशि = १ भगण			12 Sines = 1 Revolution
शीघ्रोच्च	,,	१/३० /३१ /३२ /३३	Perigee
मंदोच्च	,,	१/४१ /४२	Apogee
पात	,,	१/४२ /४३ /४४	Node
भचक्र	,,	१/६८ २/४६	Diurnal Revolution
ज्या	,,	२/१५	Sine
उत्क्रमज्या	,,	/२७	Versine
अपक्रम	,,	२/२८	Declination
	,,	२/५६	
	,,	३/१८	

संस्कृत शब्द	सहायक ग्रन्थ		अँगरेजी रूप
कोटिज्या	सूर्यसिद्धान्त	२/३०	Cosine
धन	,,	२/३८	Positive
ऋण	,,	,,	Negative
विक्षेप	,,	२/५८	Celestial Latitude
भभोग	,,	२/६४	Sidereal Angle
सममंडल विषुवलय उन्मंडल	,,	३/ ६	Prime Vertical Equatorial Circle Six O' clock Line
पूर्वापर मंडल दक्षिणोत्तर मंडल	,,	३/२४	Prime Vertical Meridian
अक्षज्या लम्बज्या	,,	३/१६	Sine of Latitude Sine of Colatitude
परमाप क्रम	,,	३/१८	Greatest Declination
नतांश	,,	३/२१	Zenith Distance
उन्नतज्या	,,	३/३६	Sine of altitude
दृग्ज्या	,,	३/३३	Sine of Nonagesimal
नतासु	,,	३/३८	Ascensional Difference from Meridian
चाप	,,	३/४१	Circular Measure of Angle
लंकोदयासु	,,	३/४३	Right Ascension
चरखंड	,,	३/४४	Ascensional Difference
लग्न	,,	३/४७	Rising Point of Ecliptic
मध्यलग्न	,,	३/४६	Longitude of Meridian
नतज्या	,,	४/२४	Sine of Zenith Distance
लम्बन	,,	५/ २	Parallax
ध्रुवक	,,	८/१२ /१५	Sidereal Angle

संस्कृत शब्द	सहायक ग्रन्थ		अँगरेजी रूप
अग्र	सिद्धान्तशिरोमणि	२/ ८	Sine of Amplitude
द्युज्या	,,	२/ ८	Radius of Diurnal Circle
कुज्या = क्षितिज्या	,,	२/ ८	Sine of Ascensional Difference
नति	,,	२/ ६	Parallax in Celestial Latitude
परमलम्बन	,,	५/१३	Horizontal Parallax
चार	,,	७/ १	Ascension
लंबांश	,,	७/३३	Colatitude
उन्नतांश	,,	७/३४	Altitude
दृन्मंडल	,,	७/३६	Vertical Circle
स्फुटलंबन	,,	८/२४	Parallax in Celestial Longitude
कदम्ब	,,	८/४२	Pole of Ecliptic
लंकोदय प्रागूज्या	आर्यभटीय	४/२५	Sine of Ascensional Difference
अपमंडल	,,	४/१-२३	Ecliptic
अपयान	,,	४/ १	Declination
भपञ्जर	,,	४/१०	Sidereal Sphere
पूर्वापर मंडल	,,	४/१६	Prime Vertical
दृक्क्षेप मंडल	,,	४/२१	Vertical Circle
अर्द्ध विष्कम्भ	,,	४/२४	Radius of Diurnal Circle
चर दल	,,	४/३०	Ascensional Difference

(ख) सहायक ग्रन्थ-सूची

१. सूर्यसिद्धान्त — सुधाकर द्विवेदी
Bib-Indica

२. आर्यभटीय— Trivandrum, Sanskrit Series

३. भारतीय ज्योतिषशास्त्र-मराठी शं० बा० दीक्षित (आर्यभूषण प्रेस—पूना)

४. बृहत्संहिता— वराहमिहिर —(बनारस, संस्कृत-ग्रंथावलि)

५. अमेरिकन एफेमरिस एण्ड नौटीकल अलमनक।

६. काशी विश्व-पंचांग

७. Treatise on Astronomy
Hugh Godfray M. A.
(Macmillan)

८. Elementary Mathematical Astronomy
Barlow and Jones
University Tutorial Press Ltd.

९. भागवत, विष्णु पुराण, भगवद्गीता, बृहदारण्यकोपनिषद् इत्यादि

१०. Star names and Their meanings
R. H. Allen
G. E. Stechert Co,
New York 1899

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

चित्रों में अशुद्धि

(१) चित्र-संख्या ६ में रेखा 'तिनशिति' का तिनशि अंश न से आगे शि विंदु की ओर जाने के स्थान पर भूल से का विंदु की ओर चला गया है। पाठक कृपया 'नक्ता' रेखा को काट कर फिर 'तिन' रेखा को बढ़ा कर 'शि' विंदु की ओर ले जायेंगे।

(२) चित्र ६ भूल से पृष्ठ १४ तथा पृष्ठ २० पर दो बार छप गया है।

(३) चित्र २६ में पाठक द च त विंदुओं को मिलाती ऋजु रेखा खींच लेंगे तथा लम्ब स ल के ल विंदु को इसी रेखा पर मानेंगे।

(४) चित्र ४१ में सू' तथा क' विन्दुओं को क्रमशः व क्ता श ति तथा व वि श सु से बाहर न होकर इन रेखाओं पर ही होना चाहिए। उनके स्थान क्रमशः ख घ तथा ग ङ विन्दुओं के बीच में हैं।

पाठ में अशुद्धि

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
३	१३	आर्यभटीयः	आर्यभटीयम्
४	१०	१६ मिनट	८ मिनट
१०	२३	'तिशिनति'	तिनशिति'
२१	१७	४ बजे प्रातः	२१ अक्तूबर ४ बजे प्रातः
२६	१३	चित्र ४—१	चित्र ६—१३
३०	२६	निकली	सम्बद्ध हुई
३४	२६	का कारण	से सम्बद्ध
३५	१३	γ	λ
३५	१६	खेती	रेवती
४०	१	α तथा सेन्टौरी (centauri) β	α तथा β सेन्टौरी (centauri)
४८	२०	अथवा दो	अथवा सूर्योदय के दो
५२	१	मंद	शीघ्र
५६	११	आनुमानिक	आनुपातिक
६७	२६	प्रुष्टि	पुष्टि
७६	४	Plare Is	Plumb
८१	११	स्थान-विशेष-अक्षांश	स्थान विशेष के अक्षांश
८२	३	अहोरात्र	अहोरात्रांतर
८३	२२	प्रत्येक	प्रत्येक को
६०	२	ताराविशेष	तारा ग्रह विशेष
६३	१४	ब० ल०	व० ल०
६४	३	गक × ल	क × ल